वर्ष : 8
अंक : 60

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
दिसम्बर 1997

ऋषिप्रसाद

6/-

हिन्दी
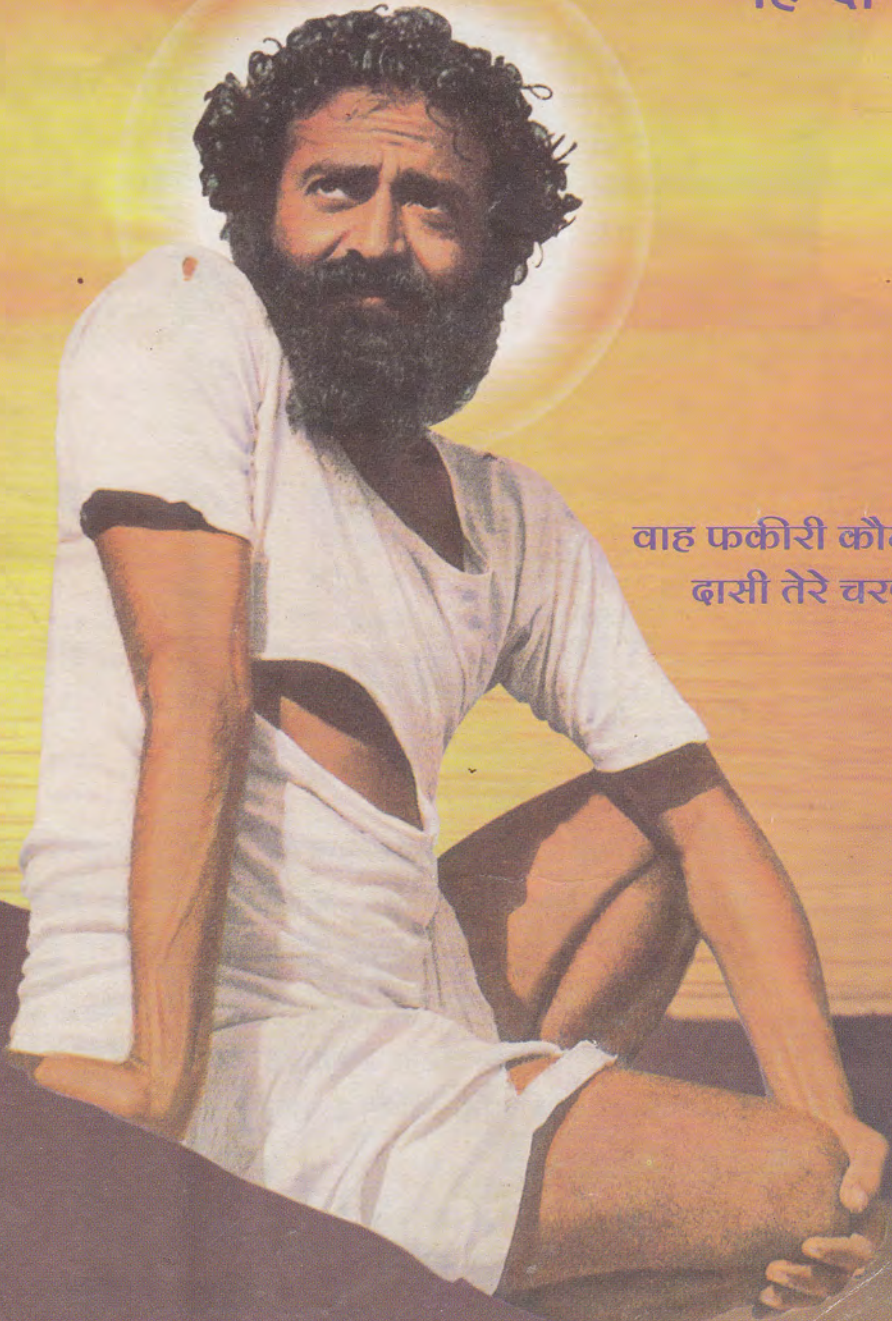
वाह फकीरी कौन अमीरी
दासी तेरे चरणों में

पूज्यपाद संत श्री आसारामजी महाराज - साधनाकाल में

ऋषि प्रसाद

वर्ष : ८
अंक : ६०
९ दिसम्बर १९९७

सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा

मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क
भारत, नेपाल व भूटान में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) आजीवन : रू. ५००/-

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 30
(२) आंजीवन : US $ 300

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८० ००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.
फैक्स : ७५०५०१२

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८० ००५ ने पारिजात प्रिन्टरी एवं भार्गवी प्रिन्टर्स, राणीप, अमदावाद में तथा पूर्वी प्रिन्टर्स, राजकोट में छपाकर प्रकाशित किया।

अमदावाद आश्रम के फोन नंबर बदल गये हैं। नये नंबर इस प्रकार हैं : (079) 7505010, 7505011.

प्रस्तुत है...

१. गीता-अमृत — २
★ सर्व हितकारी श्रीमद् भगवद्गीता
२. गुरुभक्ति — ३
३. आंतर आलोक — ४
★ इन्सान का सबसे बड़ा शत्रु : डर
४. योग-महिमा — ६
★ योगसामर्थ्य
५. प्रेरक प्रसंग — ८
★ आशाओं के दास नहीं... आशाओं के राम बनो
६. जीवन-सौरभ — १६
★ गुरु की पसंदगी
★ मनोजय
७. चिंतन-पराग — १९
★ बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव से परे
★ गुरु के सामर्थ्य की परीक्षा कभी न करें
★ वे क्या छोड़ गये ?
८. सर्वदेवमयी गौमाता — २२
★ गौमाता : अनवरतपोषिका
९. युवा जागृति संदेश — २४
★ अमर शहीद गुरु तेगबहादुरजी
१०. शरीर-स्वास्थ्य — २५
★ हृदय के लिए हितकर : गाय का घी
११. आपके पत्र — २६
१२. योगयात्रा — २७
★ गुरुदेव के यहाँ अंधेर तो क्या देर भी नहीं है...
१३. संस्था समाचार — २९

पूज्यश्री के दर्शन-सत्संग
ATN चैनल पर रोज सुबह ७-३० से ८.

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

सर्वहितकारी श्रीमद् भगवद्गीता

[गीता जयंती : १० दिसम्बर '९७ पर विशेष]

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

संपूर्ण विश्व में श्रीमद् भगवद्गीता ही एकमात्र ऐसा ग्रंथ है जिसकी जयंती मनायी जाती है। श्री वेदव्यासजी ने महाभारत में गीता का वर्णन करने के उपरांत कहा है :

गीता सुगीता कर्तव्या किमन्यैः शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनिःसृता ॥

'गीता सुगीता करने योग्य है अर्थात् श्रीगीता को भली प्रकार पढ़कर अर्थ और भावसहित अंतःकरण में धारण कर लेना मुख्य कर्त्तव्य है, जो कि स्वयं श्रीपद्मनाभ विष्णु भगवान के मुखारविन्द से निकली हुई है (फिर) अन्य शास्त्रों के विस्तार से क्या प्रयोजन है ?'

गीता में ऐसा उत्तम और सर्वव्यापी ज्ञान है कि उसके रचयिता को हजारों वर्ष हो गये हैं किन्तु उसके बाद दूसरा ऐसा ही एक भी ग्रंथ आज तक नहीं लिखा गया है। यह केवल किसी एक ही धर्म, जाति अथवा संप्रदाय से संबंधित ग्रंथ नहीं है वरन् विश्व के समस्त मानवों के कल्याण की अलौकिक सामग्री से परिपूर्ण ग्रंथ है। १८ अध्याय एवं ७०० श्लोकों में रचित यह छोटा-सा ग्रंथ भक्ति, ज्ञान, योग एवं निष्कामता आदि से भरपूर सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है।

श्रीमद् भगवद्गीता के ज्ञानामृत के पान से मनुष्य के जीवन में साहस, समता, सरलता, स्नेह, शांति और धर्म आदि दैवी गुण सहज ही विकसित हो उठते हैं। अधर्म, अन्याय एवं शोषण का मुकाबला करने का सामर्थ्य आ जाता है। भोग एवं मोक्ष दोनों ही प्रदान करनेवाला, निर्भयता आदि दैवी गुणों को विकसित करनेवाला यह गीता ग्रंथ पूरे विश्व में अद्वितीय है। किसीने कहा है :

''श्रीमद् भगवद्गीता उपनिषदरूपी बगीचों में से चुने हुए आध्यात्मिक सत्यरूपी पुष्पों से गुँथा हुआ पुष्पगुच्छ है। प्राचीन युग की सर्व रमणीय वस्तुओं में गीता से श्रेष्ठ कोई वस्तु नहीं है।''

गीता मानव में से महेश्वर का निर्माण करने की शक्ति रखती है। गीता जीते-जी मुक्ति का अनुभव कराने का सामर्थ्य रखती है। जहाँ हाथी चिंघाड़ रहे हों, घोड़े हिनहिना रहे हों, रणभेरियाँ बज रही हों, अनेकों योद्धा दूसरे पक्ष के लिए प्रतिशोध की आग में जल रहे हों- ऐसी जगह पर भगवान श्रीकृष्ण ने गीता की शीतल धारा बहायी है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के माध्यम से अरण्य की विद्या को रण के मैदान में ला दिया। शांत गिरि-गुफाओं के ध्यानयोग को युद्ध के कोलाहल भरे वातावरण में भी समझा दिया। उनकी कितनी करुणा है! गीता भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निकला हुआ वह परम अमृत है जिसको पाने के लिए देवता भी लालायित रहते हैं।

गीता के ज्ञानामृत के पान से मनुष्य के जीवन में साहस, समता, सरलता, स्नेह, शांति और धर्म आदि दैवी गुण सहज ही विकसित हो उठते हैं। अधर्म, अन्याय एवं शोषण का मुकाबला करने का सामर्थ्य आ जाता है।

...और गीता की जरूरत केवल अर्जुन को ही थी ऐसी बात नहीं है। हम सब भी युद्ध के मैदान में ही हैं। अर्जुन ने तो थोड़े ही दिन युद्ध किया किन्तु हमारा तो सारा जीवन काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, शोक, मेरा-तेरारूपी युद्ध के बीच ही है। अतः अर्जुन को

जितनी गीता की जरूरत थी उतनी, शायद उससे भी ज्यादा आज के मानव को उसकी जरूरत है।

कनाडा के प्रेसिडेन्ट मिस्टर ट्यूडो ने जब गीता पढ़ी तो वे दंग रह गये। मिस्टर ट्यूडो ने कहा :

''मैंने बाईबिल पढ़ी, एंजिल पढ़ा, और भी कई धर्मग्रंथ पढ़े। सब ग्रंथ अपनी-अपनी जगह पर ठीक हैं लेकिन हिन्दुओं का यह श्रीमद् भगवद्गीतारूपी ग्रंथ तो अद्भुत है! इसमें किसी भी मत, मजहब, पंथ, संप्रदाय की निंदा-स्तुति नहीं है बल्कि इसमें तो मनुष्यमात्र के विकास की बात है। शरीर स्वस्थ, मन प्रसन्न और बुद्धि में समत्व योग का, ब्रह्मज्ञान का प्रकाश जगानेवाला ग्रंथ भगवद्गीता है।''

गीता मानव में से महेश्वर का निर्माण करने की शक्ति रखती है। गीता जीते-जी मुक्ति का अनुभव कराने का सामर्थ्य रखती है।

ट्यूडो ने जब गीता पढ़ी तब उसे गीताकार भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली देखने की इच्छा हो आयी और वे भारत में भी आये। बाद में वे अपने जीवन की शाम हो जाये उसके पहले जीवनदाता का ज्ञान पाने के लिए प्रेसिडेन्ट पद से त्यागपत्र देकर एकांत में चले गये। दुग्धपान के लिए उन्होंने अपने पास एक गाय रखी और आध्यात्मिक अमृतपान के लिए उपनिषदों और श्रीमद् भगवद्गीता की शरण उन्होंने ली। उन्होंने लिखा है : ''Geeta is not the Bible of Hindus, but it is the Bible of humanity. गीता केवल हिन्दुओं का ही धर्मग्रंथ नहीं है बल्कि मानवमात्र का धर्मग्रंथ है।''

कैसी दिव्य महिमा है श्रीमद् भगवद्गीता की !

*

गुरुभक्ति

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

'जिसकी ईश्वर में उत्तम भक्ति होती है, जैसी भक्ति ईश्वर में होती है वैसी ही भक्ति गुरु में भी होती है- ऐसे महात्मा को ही यहाँ कहा गया रहस्य समझ में आ सकता है।' (श्रीगुरुगीता)

शास्त्रों में कहा गया है कि यदि हमें ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष को अपने गुरु के रूप में स्वीकार करना हो तो उनके प्रति हमें पूर्ण रूप से वफादार रहना चाहिए। गुरु-शिष्य के बीच का संबंध शाश्वत् होता है। कोई साधक अगर सद्गुरु की सच्ची शरण छोड़कर जहाँ-तहाँ तीर्थों में घूमे और मनमुखों (मन के अनुसार चलनेवालों) के साथ रहे तो वह आध्यात्मिक पथ पर थोड़ा भी आगे नहीं बढ़ सकता।

कोई साधक अगर सद्गुरु की सच्ची शरण छोड़कर जहाँ-तहाँ तीर्थों में घूमे और मनमुखों के साथ रहे तो वह आध्यात्मिक पथ पर थोड़ा भी आगे नहीं बढ़ सकता।

किसी साधक ने यदि किन्हीं उच्चतम कक्षा के गुरु से मंत्रदीक्षा ली हो फिर भी मन में गुरु को बदलने का प्रश्न उठ खड़ा होता हो तो समझना चाहिए कि उस शिष्य में ही कुछ कमी है, गुरु में कोई क्षति नहीं है। ऐसा साधक यदि दूसरे गुरु के पास जाये तो वहाँ भी उसकी जरूरतें पूरी नहीं होंगी। अतः शिष्य को अपने आत्मवेत्ता सद्गुरु के समीप रहकर ही अपनी क्षतियों को सुधारने का प्रयास करना चाहिए एवं गुरु बदलने की वृत्ति का त्याग कर देना चाहिए।

एकलव्य के उदाहरण को न भूलें। उसे तो अपने गुरु का सान्निध्य भी प्राप्त नहीं था फिर भी एकलव्य की भक्ति इतनी प्रबल थी कि उसने अपने गुरु की मिट्टी की मूर्ति बनाकर उनकी भक्ति की। एकलव्य के मिट्टी के गुरु ने उसे धनुर्विद्या का गुप्त ज्ञान दिया और वह धनुर्विद्या में अर्जुन से भी ज्यादा योग्यता प्राप्त करने में सफल हो सका। यहाँ वास्तव में मूल्य तो भावना का ही है।

- स्वामी शिवानंदजी महाराज

महत्वपूर्ण निवेदन : सदस्यों के डाक पते में परिवर्तन अगले अंक के बाद के अंक से कार्यान्वित होगा। जो सदस्य ६२ वें अंक से अपना पता बदलवाना चाहते हैं, वे कृपया दिसम्बर तक अपना नया पता भिजवा दें।

इन्सान का सबसे बड़ा शत्रु : डर

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

हमारे संशय हमें सबसे अधिक धोखा देते हैं। इनकी वजह से हमारे हाथों से बहुत-से अनमोल पदार्थ निकल जाते हैं जिन्हें हम पा सकते थे, परन्तु संशय के कारण उन्हें हमने खो दिया।

मानव जीवन को नष्ट करनेवाला सबसे बड़ा शत्रु डर है। डर के कारण चरित्र में गिरावट आती है। हमारे मन की आशाएँ मिट जाती हैं, बीमारी लग जाती है, होठों की हँसी छिन जाती है।

> *एक बालक के लिए इससे अधिक दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि उसे एक ऐसी माँ मिले जो हर समय उसके दिल में डर की भावना पैदा करती रहे ?*

डर इन्सान का सबसे बड़ा शत्रु है जो हर बुराई की जड़ है। क्रियाविज्ञानवेत्ता अब यह बात अच्छी तरह जान गये हैं कि डर के कारण खून भी अपनी शक्ति को खो देता है। डर से ही हाजमे की ताकत कम हो जाती है जिससे इन्सान का स्वास्थ्य खराब रहने लगता है। मूल रूप से उसे अनेक बीमारियाँ आ घेरती हैं। डर ही जवानी की खुशियों का नाश करता है। बुढ़ापे में वह एक भयंकर रोग है। डर पैदा होते ही हमारा उत्साह, प्रेरणा, आगे बढ़ने की शक्ति दम तोड़ जाती है। जहाँ पर डर होगा वहाँ पर खुशी एक पल के लिए भी नहीं टिक सकती।

> *मानव जीवन को नष्ट करनेवाला सबसे बड़ा शत्रु यह डर है। डर के कारण चरित्र में गिरावट आती है। हमारे मन की आशाएँ मिट जाती हैं, बीमारी लग जाती है, होठों की हँसी छिन जाती है।*

इस विषय में महान् डॉ. विलियम एच. होस्कीम्ब ने कहा है : ''शरीर में सबसे अधिक घातक, सबसे अधिक नुकसान करनेवाली हालत इस डर की है कि जब इन्सान के मन में डर का संचार होता है। डर के अनेक कारण, अनेक दशाएँ हैं, कई श्रेणियाँ हैं। सबसे अधिक खतरे की आशंका से लेकर साधारण स्तर के संशय तक किसी भी प्रकार का डर हो, वह शरीर द्वारा किये जानेवाले कामों में अवश्य रुकावट डालता है। किसी भी प्रकार का डर हो किन्तु इसका परिणाम एक ही है। हार-जीत का डर किसी-न-किसी रूप में हमारी कार्यशीलता का शत्रु होता है। इसी डर के कारण हमारे शरीर के सारे केन्द्र जो कार्यशक्ति पैदा करते हैं वे सारे अपंग बनकर रह जाते हैं। डर से कीटाणु अनेक रूपों में हमारे शरीर की नाड़ियों में फैल जाते हैं और हमारी कार्यशक्ति को नष्ट कर देते हैं।''

इस विषय के विशेषज्ञ होरिस फ्लैचर ने कहा है : ''डर की तुलना वातावरण में पिचकारी द्वारा कार्बन डायाक्साइड गैस फैलने से की जा सकती है। डर के कारण मानसिक, चारित्रिक तथा आध्यात्मिक पतन हो जाता है और कई बार तो आदमी की जीवनशक्ति मरने जैसी हो जाती है जिससे शरीर के विकास का मार्ग बन्द ही रह जाता है।''

विश्व के सबसे बुरे कर्मों में से यह भी एक बुरा कर्म है कि बच्चों के कोमल मन पर डर की छाप लगा दी जाए। समय के साथ डर की यह जड़ पूरा वृक्ष बनकर उसके मन पर छा जाती है। यही जड़ उसके जीवन के प्रकाश पर अपनी काली छाया डाल देती है।

बालकों को डराने के लिये हम जो चित्र दिखाते हैं वे चित्र बच्चों के मन पर अंकित हो जाते हैं तथा उनके जीवन की हर खुशीरूपी पनपते प्रकाश को ढँक देते हैं।

प्रसिद्ध ऑस्ट्रेलियन विद्वान ने लिखा है : ''एक बालक के लिए इससे अधिक दुर्भाग्य क्या हो सकता है कि उसे एक ऐसी माँ मिले जो हर समय उसके दिल में डर की भावना पैदा करती रहे । जब माँ ही उसे हर समय डराती रहेगी तो उसका दिल कमजोर होगा ही । इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे बड़े होकर भी किसी दुर्घटना अथवा बुरी खबर की आशंका से ग्रस्त रहते हैं । जो माँ इस खतरे के प्रति सावधान न होकर कार्य करती है वह बच्चों के जीवन की सब खुशियों को समाप्त कर देती है और सुखों को जलाकर खाक कर देती है ।''

जो लोग बच्चों को डराकर अपने बस में करना चाहते हैं वे लोग उनकी आगे बढ़ने की शक्ति को नष्ट कर देते हैं ।

हजारों-लाखों लड़के-लड़कियाँ जरा-सी बात के ऊपर काँप उठते हैं, कमजोरी से ग्रस्त होते हैं, ढीले-ढाले और शारीरिक दृष्टि से भी सुस्त नजर आते हैं । उसका कारण यही होता है कि बचपन में ही उन्हें जरा-जरा-सी बात पर डराया गया होता है । डर का भयंकर भूत उनके मन में बैठ जाता है । उनके अन्दर इतनी कमजोरी आ जाती है कि वे किसी भी काम को शुरू करते समय काँपने लगते हैं । माँ-बाप तो मूर्खता के कारण बच्चे को किसी संभावित घात से बचाने का प्रयत्न करते हैं । वे यह बात भूल जाते हैं कि बार-बार बच्चे को डराकर वे उसके साहस पर निरन्तर चोट मारते हैं ।

सफलता के प्रधान कारण इस प्रकार हैं :

(१) साहस (२) सहनशक्ति (३) आत्मनिर्भरता और (४) आत्मनियंत्रण

परन्तु डर के कारण इन पर सबसे अधिक चोट पड़ती है । डॉ. कीनो फेरियानी ने लिखा है : ''निरन्तर बीस वर्ष तक मैंने अपराध, मनोविज्ञान तथा बाल मनोविज्ञान का अध्ययन किया है और हजारों बार मुझे इस कष्ट भरे सत्य को स्वीकार करने के लिए मजबूर होना पड़ा है कि ८० % बच्चों को अपराधी मनोवृत्तिवाला बनने से बचाया जा सकता था, यदि उनके माँ-बाप समय रहते उन्हें अच्छी शिक्षा, ज्ञान, ऊँची विचारधारा से परिचय करवाकर डर नाम की मनहूस चीज उनके मन से निकाल देते और उन्हें वीरता, देशभक्ति, मानव-कल्याण का पाठ पढ़ाते । इस प्रकार उनके जीवन का समूचा रूप बदल सकता था ।''

माँ-बाप तथा बहन-भाई और नाते-रिश्तेदार केवल डरने जैसी वस्तु-परिस्थिति से ही बच्चे को नहीं डराते बल्कि बच्चे को डराने के कई रास्ते भी खोज लेते हैं, जैसे कि भूत-प्रेतों की झूठी कहानियाँ, शैतान का डर, राक्षसों की कहानियाँ । यह सब कुछ बच्चों के मन पर बोझ बनता जाता है । एक दिन ऐसा आता है कि यह भयंकर डर उनके मन को सदा के लिए दबा लेता है । इससे उनके जीवन की प्रगति के द्वार अपने-आप बन्द हो जाते हैं ।

ऐसे माँ-बाप को क्या कहा जाए ? बच्चों के मित्र या शत्रु ?

इन्सान का सबसे बड़ा शत्रु तो डर होता है । उससे भी बड़ा शत्रु ऐसे माँ-बाप को कहा जाएगा जो बच्चों को बचपन से ही डराते-धमकाते रहते हैं । धीरे-धीरे उनका जीवन अन्धकार में डूब जाता है । इसका दोषी कौन है ?

डर तो एक ऐसा भूत है जो मानव शरीर के अन्दर छुपा रहता है । वह मनुष्य के सारे सुख छीनकर उसे दुःखों की गोद में ऐसे धकेल देता है जैसे कोई राह चलते आदमी को मार-पीट कर उसे अपाहिज बनाकर फेंक दे । जो लोग बच्चों को डराकर अपने बस में करना चाहते हैं वे लोग उनकी आगे बढ़ने की शक्ति को नष्ट कर देते हैं । बच्चों की बुद्धि पर बुरा प्रभाव पड़ता है जिसके कारण ये ही बच्चे बड़े होकर कोई भी महान् कार्य करने से वंचित रह जाते हैं । जीवन भर वे डर की मनोवृत्ति के नीचे दबे रहते हैं ।

महात्मा वही है जो चित्त को डावाँडोल कर दे ऐसे प्रसंग आये फिर भी चित्त को वश में रखे, क्रोध और शोक को प्रविष्ट न होने दे ।

योगसामर्थ्य

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

यह एक घटित घटना है। कुछ समय पूर्व एक ऐसे योगी थे जो आकाश मार्ग से उड़कर जा सकते थे। एक नरेश ने उन सिद्ध योगी को प्रार्थना की कि 'महाराज ! भिक्षा हमारे यहाँ ही करियेगा ।' वे योगी प्रतिदिन आकाश मार्ग से उड़कर राजा के प्रांगण में उतरते थे। राजा बड़े आदर से उन्हें भिक्षा करवाते और फिर वे पुनः आकाश मार्ग से उड़कर चले जाते।

नारी के गर्भ में एक नाड़ी होती है जिसकी छाया पड़ने से सर्प अंधा हो जाता है। जो सदा उसके साथ काम-भाव से रमते रहते हैं उनकी तो भगवान जाने क्या गति होगी ?

एक दिन किसी कार्यवशात् उस नरेश को कहीं जाना पड़ा। तब उन्होंने अपनी एक मधुरभाषी एवं व्यवहारकुशल परिचारिका जो अत्यंत सुन्दर शरीर एवं सुन्दर विचारोंवाली थी, अत्यंत चित्ताकर्षक व्यक्तित्व से संपन्न युवती थी, उसे योग्य समझकर कहा :

''मैं कहीं अत्यावश्यक कार्य से बाहर जा रहा हूँ। अतः महाराजजी को तुम भोजन करवा देना।''

महाराज तो आकाश मार्ग से आये। उस रूप-सौन्दर्य से युक्त कुशल परिचारिका ने महाराज का अतिथि-सत्कार किया एवं उन्हें भोजन कराया। उस योगी ने योगसिद्धि तो प्राप्त कर ली थी, जिसके बल से वे आकाश मार्ग से उड़कर आ-जा सकते थे, किन्तु अभी तक आत्मसुख को प्राप्त नहीं किया था। अतः उस रूप-लावण्य से संपन्न युवती को देखते-देखते भोजन करने से उनके मन में उस युवती के प्रति थोड़ा आकर्षण होने लगा। भोजन परोसते-परोसते युवती की छाया भी उन योगी के ऊपर पड़ी। कहते हैं :

आप तो आनंदित रहोगे ही लेकिन आपके संपर्क में आनेवालों को भी मधुरता का, आनंद का कुछ अहसास होने लगेगा।

माया की छाया पड़े, अंधा होत भुजंग।
जो निसदिन तासे रमे, उसकी जाने भगवंत ॥

नारी के गर्भ में एक नाड़ी होती है जिसकी छाया पड़ने से सर्प अंधा हो जाता है। जो सदा उसके साथ काम-भाव से रमते रहते हैं उनकी तो भगवान जाने क्या गति होगी ?

महाराज! उन योगी का आत्मबल क्षीण हो गया। उन्होंने उड़ने का संकल्प किया तो उड़ न सके। उन योगी ने बात पलट दी और कहा :

''जाओ, नगर में ढिंढ़ोरा पिटवा दो कि प्रजा की कई महीनों की दर्शन एवं पूजन की अभिलाषा को आज योगीराज पूर्ण करेंगे और आज वे राजमार्ग से पैदल ही जायेंगे।''

अब वे योगी अभिलाषा क्या पूर्ण करते ? उन्हें विवश होकर पैदल ही जाना पड़ा क्योंकि उड़ने की शक्ति तो अब नहीं रही थी। लोगों ने उनके स्वागत में जयघोष से गगन को गुँजा दिया किन्तु वे फिर दुबारा न उड़ सके।

चित्त में भोग-विलास के भाव आते ही चित्त की शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं, आत्मबल क्षीण हो जाता है और भोग के त्याग का भाव आते ही आत्मबल बढ़ने लगता है।

ध्यान-भजन करने में मन क्यों नहीं लगता ? क्योंकि वासना मन को इधर-उधर भटका देती है। हम संसार को सच्चा मानते हैं इसीलिए मन इधर-उधर भागता है। यदि संसार की नश्वरता का ख्याल आ जाये तो ध्यान-भजन में भी रुचि

होने लगती है। अतः कभी-कभी श्मशान में जाकर मन को समझाना चाहिए कि 'देख, यही तेरी आखिरी मंजिल है।'

आपके अंदर अद्भुत शक्तियाँ छुपी हुई हैं। यदि योग की, एकाग्रता की, निर्वासनिकता की जरा-सी भी किरण मिल जाये तो आपको लगेगा कि बीता हुआ जीवन तो आपने मात्र दो कौड़ी में ही बेच दिया। आपको निर्वासनिक तत्त्व की यदि एक झलक भी मिल जाये तो फिर बीती हुई जिंदगी आपको लॉलीपॉप के लिए राजी होते बालक जैसी लगेगी। जैसे बालक के सामने हीरे-जवाहरात की अपेक्षा बिस्किट-लॉलीपॉप का मूल्य ज्यादा होता है किन्तु बड़ा होने पर वह हीरे-जवाहरात आदि का मूल्य समझता है। ऐसे ही योग का, ध्यान का सुख मिलने पर मनुष्य को संसार का विषय-सुख तुच्छ लगने लगता है। ऐसा अनुपम आत्मसुख है। ये संसार की जो सुविधाएँ हैं वे सब बिस्किट-लॉलीपॉप जैसी ही हैं। इसमें आप क्यों राजी होते हो ? आपके अंदर ही अद्भुत खजाना पड़ा है। उसे जान लो तो आप तो राजी होगे ही, आनंदित होगे ही, दूसरों को भी आनंद का दान देनेवाले दाता बन जाओगे।

वेदव्यासजी ध्यान करते थे। ध्यान का अभ्यास बढ़ाते-बढ़ाते वे आठ घंटे ध्यान में बैठे रहते थे। भूख लगती तो बेर खा लेते और बाकी समय ध्यान-भजन एवं वेद, शास्त्र, पुराण के अध्ययन में व्यतीत करते थे। बेर खाकर रहने के कारण उनका एक नाम पड़ा बादरायण। उन्हीं वेदव्यासजी ने दृष्टिमात्र से पांडु, धृतराष्ट्र एवं विदुर को जन्म दिया। अभी तो जिनको बेटा नहीं होता वे लोग न जाने कितनी दवाइयाँ खाते हैं, क्या-क्या उपाय करते हैं फिर भी बालक नहीं होता है। वेदव्यासजी का यह सामर्थ्य योग का ही तो प्रभाव है। मनुष्य के अंदर कितनी शक्ति है !

> ***अति बोलने पर नियंत्रण, अति परिश्रम पर नियंत्रण, अति सोने पर नियंत्रण करके शेष समय एकाग्रता के अभ्यास में लगायें तो थोड़े-ही महीनों में आपकी बहुत ऊँची यात्रा हो जायेगी।***

योगी की एकाग्रता एवं भक्त की भावना में कितना प्रभाव है ! इसी सामर्थ्य के प्रभाव से मीरा का जहर अमृत में परिणत हो गया। मनुष्य के मन में अमाप सामर्थ्य है। बस, जरूरत है तो उसे विकसित करने की। आज आप यहाँ टेलिफोन का डायल घुमाकर अमेरिका बात कर सकते हैं। आज से पचास-साठ वर्ष पूर्व कोई यदि कहता कि यहाँ टेलिफोन का डायल घुमाने से चलती गाड़ी में बैठे-बैठे सेल्युलर फोन द्वारा अमेरिका से करीब दुगुने दूरीवाले देश में भी बात कर सकते हैं, तो लोग कहते कि समुद्र में खंभे कैसे डाले जायेंगे ? किन्तु आज है न संभव ! यंत्रों में जब इतनी शक्ति है तो मंत्रों की शक्ति तो यंत्र से कई गुना ज्यादा होती है और मंत्रों से भी ज्यादा संकल्प में ताकत होती है। संकल्पशक्ति का विकास एकाग्रता से होता है, योग से होता है।

योग से बहुत लाभ होते हैं किन्तु योगाभ्यास के समय सावधानी रखने की अत्यंत आवश्यकता है। एक कौर भी ज्यादा भोजन करने से शरीर बोझिला हो जाता है। अतः भोजन का थोड़ा नियंत्रण करना चाहिए। अति बोलने पर नियंत्रण, अति परिश्रम पर नियंत्रण, अति सोने पर नियंत्रण करके शेष समय एकाग्रता के अभ्यास में लगायें तो थोड़े-ही महीनों में आपकी बहुत ऊँची यात्रा हो जायेगी। वाणी एवं स्वभाव में मधुरता, चित्त की पवित्रता आदि ऐसे गुण विकसित होने लगेंगे कि आप तो आनंदित रहोगे ही लेकिन आपके संपर्क में आनेवालों को भी मधुरता का, आनंद का कुछ अहसास होने लगेगा। थोड़े-से प्रयोग से ही आपमें अनेक सिद्धियाँ आ सकती हैं तो फिर यदि नियमित रूप से थोड़ा प्रयास किया जाये तो आगे तो बहुत कुछ है...

> ***चित्त में भोग-विलास के भाव आते ही चित्त की शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं, आत्मबल क्षीण हो जाता है और भोग के त्याग का भाव आते ही आत्मबल बढ़ने लगता है।***

*

आशाओं के दास नहीं... आशाओं के राम बनो

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

आशायाः ये दासास्ते दासाः सर्व लोकस्य।
आशा येषां दासीः तेषां दासायते लोकः ॥

'जो लोग आशा के गुलाम बनते हैं वे सारी दुनियाँ के गुलाम बने रहते हैं। आशा जिन लोगों की दासी बनती है उन लोगों के लिए सारी दुनियाँ गुलाम बन जाती है।'

कल कभी कल होकर नहीं आता। वह जब भी आता है, वर्त्तमान होकर, आज होकर ही आता है। इसलिए वर्त्तमान में ही जियो। जो बीत गया उसको भूल जाओ।

जो बीत गई सो बीत गई,
उस बात का शिकवा कौन करे ?
जो तीर कमान से निकल गई,
उस तीर का पीछा कौन करे ?

जो गुजर गया उसको याद मत करो। जो आएगा उसके लिए अभी से चिंतित मत हो। भूतकाल को याद करने से आदमी पीठ के बल गिरता है और भविष्य का चिंतन करने से मुँह के बल गिरता है। तुम तो वर्त्तमान में रहो। अभी जो हो रहा है उसे आनंद से गुजरने दो। तुम्हारे दोनों हाथ में लड्डू रहेगा।

अगर आशा ईश्वरप्राप्ति की तरफ गई तो यमदूत के चौपड़े में दिवाला निकल गया और संसार की ओर चली गयी तो मुक्ति के चौपड़े में चौकड़ी पड़ गयी।

आत्मविद्या, ब्रह्मविद्या बाह्य धन से बड़ी है, लौकिक विद्या से बड़ी है, सत्ता से बड़ी है, रिद्धि-सिद्धि से बड़ी है। अरे, भगवान के ऐश्वर्य से भी ब्रह्मविद्या बड़ी है। आशा जिन लोगों की दासी बनती है उन लोगों के लिए सारी दुनियाँ गुलाम बन जाती है। यह बात साधारण लोगों के लिए नहीं, साधकों के लिए है, जिज्ञासुओं के लिए है। जिज्ञासु के जीवन में ही उन्नति के ऊँचे शिखरों को पाने की संभावना है और उनसे ही आशा की जाती है। वे ही आशा के स्वामी बनते हैं। वे ही आशाओं के राम बनने की इच्छा करते हैं, आशाओं के दास नहीं। जो आशाओं के दास हैं वे सारी दुनियाँ के दास हैं और जिन्होंने आशा को दासी बना दिया उनकी सारी दुनियाँ दासी हो जाती है। यह श्लोक तो बड़ा सरल है पर इसमें बड़ा रहस्य छुपा हुआ है।

आशायाः ये दासास्ते दासाः सर्व लोकस्य।
आशा येषां दासीः तेषां दासायते लोकः ॥

यह बिल्कुल सीधी बात है कि जब-जब आदमी चिंतित होता है, दुःखी या भयभीत होता है तो उसके भय का कारण कोई न कोई आशा ही होती है। चिंतित व्यक्ति की चिंता का कारण भी आशा होती है और झगड़ाखोर व्यक्ति के झगड़े का कारण भी आशा होती है। जो आशा का दास है वह तीनों लोकों का दास है। जो आशा का स्वामी है वह त्रिलोकी का स्वामी है।

सम्राट विक्रमादित्य देवतुल्य भूमि उज्जैन नगरी से घोड़े पर सवार होकर वन की ताजी-खुली हवा में सैर करने निकले थे। रात्रि का समय था। वसुंधरा पर अंधेरा छाया हुआ था। उन वीर पुरुष को आराम करने की इच्छा हुई और वे किसी वृक्ष के नीचे बैठ गये।

विक्रमादित्य बैठे हुए थे। इतने में रूप-लावण्य की अम्बार चार सुन्दरियाँ वहाँ से गुजरीं। हीरे-जवाहरात-गहनों की झंकार सुनकर वे वीर पुरुष उठे और जय-जयकार करके उनका अभिवादन किया। वे देवियाँ वहाँ से गुजर गयीं। थोड़ी दूर जाकर उन देवियों ने आपस

में चर्चा की । एक देवी कहने लगी : ''देखो ! वह वीर पुरुष कौन है पता है ?

दूसरी ने कहा : ''हाँ, मैं जानती हूँ । परदुःखकातर, सहनशील और लोगों की आध्यात्मिक एवं लौकिक उन्नति करनेवाले, प्रजा का पोषण करनेवाले वे धर्मात्मा राजा विक्रमादित्य हैं।''

पहली देवी कहने लगी : ''उन्होंने खड़े होकर जो जय-जय करके अभिवादन किया था, वह मेरा किया था। तुम लोगों का नहीं किया था । क्योंकि मैं जहाँ जाती हूँ वहाँ जय-जय हो जाती है । निर्धन के पास जाती हूँ तो निर्धन की भी जय-जय हो जाती है । गुणहीन के पास जाती हूँ तो उसका भी जय-जयकार हो जाता है । कोई चाहे आलसी हो पर वहाँ भी यदि धन होता है तो आलस्य भी सुख और शांति का दाता बन जाता है। चाहे मूर्ख हो वह भी मौनी में गिना जाता है। चाहे दुराचारी हो वह भी सेवाभावी गिना जाता है । जहाँ धन आ जाता है वहाँ सब दुर्गुण ढँक जाते हैं । मैं जिसके पास जाती हूँ उसकी जय-जयकार हो जाती है । इसलिए उन्होंने मुझ लक्ष्मी को प्रणाम किया।''

दूसरी देवी ने कहा : ''ना ना, तुम भुलावे में हो। तुमको प्रणाम नहीं, प्रणाम मेरे को किया था। जिसकी वाणी में आकर्षण है, जिसकी वाणी में विद्या है उसका तो राजा, महाराजा, धनवान, विद्वान सभी सत्कार करते हैं। विद्वान जहाँ भी जाता है वहाँ पूजा जाता है। वह देश-देशान्तर में पूजा जाता है। उन्होंने मुझ सरस्वती का जय-जयकार किया।''

तब तीसरी देवी ने कहा : ''सखी ! चुप रहो । उन्होंने मुझे 'जय-जय' किया । मैं हूँ कीर्ति । किसी की कीर्ति होती है, पाँच-पच्चीस व्यक्ति किसी की कीर्ति करते हैं तो और व्यक्ति भी उसकी कीर्ति में जुड़ जाते हैं। जहाँ मैं जाती हूँ वहाँ उसकी 'जय-जय' होती ही है। यह 'जय-जय' तुमको नहीं किया, मुझे किया।''

चौथी देवी ने कहा : ''ऐ...! तुम लोग पागलों जैसी बातें कर रही हो। मेरी ओर भी तो निहारो ! मैं हूँ आशा। मेरा जय-जयकार किया था उन्होंने।''

उन चारों में अब आपस में थोड़ी खींचातानी हो गई। लक्ष्मी कहती है मेरी 'जय-जय' हुई। सरस्वती कहती है मेरी 'जय-जय' हुई। कीर्ति कहती है मेरी 'जय-जय' हुई और आशा कहती है मेरी हुई। आखिर देवियाँ थीं !

कहानी कहती है कि उन देवियों ने समझौता कर लिया कि हम आपस में क्यों लड़ें ? अभी तो वे जय-जयकार करनेवाले पचास कदम ही दूर हैं। चलो वापस, उनसे ही क्यों न पूछ लें ? वे वापस आ गईं। विक्रमादित्य ने उठकर उनका अभिवादन किया।

तब लक्ष्मीजी ने कहा : ''आपने जो 'जय-जयकार' किया, मैं तो जानती हूँ कि वह मेरा ही अभिवादन किया। दुराचारी के पास अगर मैं चली जाती हूँ तो उसका यश होने लगता है। मूर्ख के पास जाऊँ तो उसका भी यश होने लगता है। इसलिए आपने मेरा अभिवादन किया, यह मैं तो जानती हूँ लेकिन इनको आप कह दो।''

विक्रमादित्य : ''देवी ! मैंने आपको देखकर जय-जयकार नहीं किया था। आप मूर्ख के पास जाती हैं तो भले मूर्ख का जय-जयकार हो जाता है लेकिन अगर मूर्ख सावधान नहीं रहा तो महामूर्ख बनता जाता है। धन बढ़ने से पापी अधिक पाप करता जाता है

कल कभी कल होकर नहीं आता । वह जब भी आता है, वर्त्तमान होकर, आज होकर ही आता है। इसलिए वर्त्तमान में ही जियो । जो गुजर गया उसको याद मत करो । जो आएगा उसके लिए अभी से चिंतित मत हो। भूतकाल को याद करने से आदमी पीठ के बल गिरता है और भविष्य का चिंतन करने से मुँह के बल गिरता है । तुम तो वर्त्तमान में रहो ।

आशा जिन लोगों की दासी बनती है उन लोगों के लिए सारी दुनियाँ गुलाम बन जाती है।

और पाप को छुपाता जाता है । वह समझता है कि इधर कोई देखनेवाला नहीं है । आप जाती हैं तो सुविधाएँ तो मिलती हैं लेकिन साथ ही साथ लोगों की भोग-विलास की आग भी भड़कती है और कब आप चली जाओ इसका कोई भरोसा नहीं। फिर वह रोता ही रहता है। इसलिए आपको देखकर मैंने जय-जयकार नहीं किया ।''

आशा के जो स्वामी हैं उनकी एक मीठी मुस्कान या एक मीठी निगाह मात्र से और लोग उन्नत होने लगते हैं।

सरस्वतीजी मुस्कुराई और बोलीं : ''आप वास्तव में विद्या के पुजारी हो । मैं जहाँ होती हूँ वहीं जयघोष होता है । आपने मेरा ही अभिवादन किया था ।''

विक्रमादित्य : ''माताजी ! मैंने आपका भी अभिवादन नहीं किया । आप सरस्वती हो, विद्या हो लेकिन वही विद्या अगर रोटी कमाने के पीछे लग जाती है, दूसरे को नीचा दिख़ाने के पीछे लग जाती है, रट-रटकर खोपड़ी खाली करने के पीछे लग जाती है तो जीवन व्यर्थ हो जाता है। आपको देखकर मैंने अभिवादन नहीं किया था ।''

योगसाधना करने के बाद जो अवस्था आती है वह सती और सत्‌शिष्यों को सहज में ही प्राप्त हो जाती है । सत्‌शिष्य अपनी इच्छा गुरु की इच्छा में मिला देता है । पतिव्रता स्त्री अपनी इच्छा पति की इच्छा में मिला देती है।

तब कीर्ति ने कहा : ''फिर जरूर मुझे देखकर अभिवादन किया होगा । जहाँ मैं जाती हूँ वहाँ सब जय-जय करते हैं ।''

विक्रमादित्य : ''आप जहाँ जाती हो वहाँ 'जय-जय' तो करते हैं लेकिन अपने को भूले रहते हैं। कीर्ति-कीर्ति करके जिस शरीर की कीर्ति होती है उसीको 'मैं' मानने की गलती करते हैं। इसलिए कीर्ति भी खतरनाक हो जाती है। मैंने आपका भी जय-जयकार नहीं किया ।''

अब तीन को 'ना' कह दिया तो चौथी की बारी आनी ही थी । तब आशा ने कहा :

''क्यों, विक्रमादित्य ! लक्ष्मी कमाने की आशा से ही लोग मेहनत करते हैं । आशा का बीज न हो तो लोग धनोपार्जन में न लगें । आशा का बीज न हो तो लोग विद्याध्ययन करने में न लगें । आशा का बीज न हो तो दुकानदार न सामान खरीदेगा और न धंधा करेगा । आशा का बीज न हो तो तपस्वी तप नहीं करेगा । आशा का बीज न हो तो जपी जप नहीं करेगा । आशा का बीज न हो तो योगी योग नहीं करेगा । आशा का बीज न हो तो गृहस्थ गृहस्थी की गाड़ी नहीं खींचेगा। इन सबके मूल में आशा का विचरण होना ही चाहिए । इसलिए आपने आशा का ही अभिवादन किया होगा ।''

विक्रमादित्य : ''आशा का अभिवादन तो किया लेकिन 'जय-जय' दो-बार किया । कौन-सी आशा का 'जय-जय' किया ? उस आशा का जो कि राम की तरफ ले जाये । बाकी की आशा तो भटका देती है। इसीलिए मैंने दो बार 'जय-जय' किया । अगर आशा ईश्वरप्राप्ति की तरफ गई तो यमदूत के चौपड़े में दिवाला निकल गया और संसार की ओर चली गयी तो मुक्ति के चौपड़े में चौकड़ी पड़ गयी। इसलिए दो बार तेरा जय-जयकार ।''

हितोपदेश नाम के छोटे-से ग्रंथ में लिखा है :

सर्वं अधितं तेन तेंन सर्वं अनुष्ठितम् ।
येन आशा पृथक्कृत्वा नैराश्यं अवलम्बितम् ॥

उसने सारे अनुष्ठान कर लिए और उसने सब कुछ अध्ययन कर लिया जिसने नैराश्य का अवलम्बन लिया यानी आशा का, तृष्णा का त्याग किया ।

श्री योगवाशिष्ठ में आता है : ''हे रामचंद्रजी ! इतना तो नरक में भी दुःख नहीं जितना तृष्णावान् को है । इतना सुख तो स्वर्ग में भी नहीं जो इच्छारहित, आशारहित पुरुष को प्राप्त होता है ।''

कबीरजी ने कहा है :

कबीरा जोगी जगत गुरु, तजे जगत की आस ।
जो जग की आशा करे, जग गुरु वह दास ॥

जो निम्न इच्छाओं की पूर्ति में लग जाता है वह नीचे के केन्द्र में आ जाता है और गुलाम बनता जाता है। जो निम्न इच्छाओं को छोड़ता है और की हुई गलती को नहीं दोहराता है तो वह उसकी साधना बन जाती है। निम्न इच्छाओं को न पोसे तो उसके चित्त की चंचलता क्षीण हो जाती है। उसका चित्त शांत पद में स्थित होता है। शांत पद वह आत्मदेव है, परमात्मा है जहाँ जीव को विश्रांति मिलती है। उस विश्रांति के सुख के आगे ब्रह्माजी का, ब्रह्मलोक का सुख भी छोटा हो जाता है। इन्द्र का इन्द्रपद भी छोटा हो जाता है। इच्छा त्यागने से जो सुख मिलता है, आशा त्यागने से जो शांति मिलती है, भीतर का जो प्रकाश मिलता है उसके आगे आशा का दास बनने में घाटा ही घाटा है।

> *जो आशाओं के दास हैं वे सारी दुनियाँ के दास हैं और जिन्होंने आशा को दासी बना दिया उनकी सारी दुनियाँ दासी हो जाती है।*

वशिष्ठजी कहते हैं : ''हे रामजी ! आदमी जितनी इच्छा करता है, आशा करता है उतना ही हृदय से लघु होता जाता है और जितनी-जितनी आशा छोड़ता है उतना महान् होता जाता है।''

> *उसने सारे अनुष्ठान कर लिए और उसने सब कुछ अध्ययन कर लिया जिसने नैराश्य का अवलम्बन लिया यानी आशा का, तृष्णा का त्याग किया।*

आप किसी मित्र से मिलते हो तब अगर बड़ा बनने की, सुखी होने की आशा से बात करते हो तो आपका हृदय कुरेदता रहता है तथा उतना आनंद नहीं आता। यदि आशारहित होकर मिलते हो तो प्रेम प्रगट होता है, ईमानदारी प्रगट होती है और आप एक-दूसरे के लिए प्राण देने को भी तत्पर हो जाते हो।

अंदर में अगर कुछ आशा भरकर आप सोचते हो तो आपकी सोचने की दृष्टि बहुत हल्की हो जाती है और आशाएँ छोड़कर आशा के दास नहीं, आशा के स्वामी बन जाते हो तो आपके द्वारा नया प्रकाश, नई रोशनी, नया मार्गदर्शन निकलता है। आशा के जो स्वामी हैं उनकी एक मीठी मुस्कान या एक मीठी निगाह मात्र से और लोग उन्नत होने लगते हैं। आशा-तृष्णा से भरकर जो लोग अतिथि का सत्कार करते हैं, सम्मान करते हैं और उन्हें सुविधाएँ देते हैं उसमें अतिथि का इतना कल्याण नहीं होता जितना आशारहित होकर करने से होता है। आशारहित होकर किसी अतिथि को केवल पानी का प्याला भी पिला देते हो, किसीको केवल प्रेमभरी मुस्कान भी दे देते हो या अभिवादन कर देते हो तो उस अतिथि के चित्त पर आध्यात्मिकता का गहरा असर पड़ता है। आशारहित चित्त ब्रह्म में स्थित हो जाता है और तृष्णावान् चित्त जगत में भटकता है।

सुनी है एक कहानी : एक बिल्ली सपना देख रही थी। इतने में एक कुत्ता जोर से भौंका। बिल्ली ने कहा :

''पागल ! मूर्ख ! यह क्या गड़बड़ कर दी ?''

कहानी कभी कल्पित भी हुआ करती है तो कभी सच्ची भी होती है।

बिल्ली : ''मैं सपना देख रही थी।''

कुत्ता : '' सपना क्या था ?''

बिल्ली : ''सपने में चूहों की बरसात हो रही थी। बड़ा मजा आ रहा था।''

कुत्ता : ''मूर्ख कहीं की ! चूहों की कभी बरसात होती है ? अरे, हड्डियों में चिपके मांस की बरसात हो रही थी- ऐसा कह। ऐसा सपना होगा।''

एक बार बुद्धू हलवाई अपने दोस्त के साथ ससुराल गया। ससुराल में एक दिन रहा और शाम को बगीचे में घूमने गया। बगीचे के किसी कोने में बैठा और बोलने लगा :

''आहा ! शादी तो हो गयी। अब कमायेंगे। बड़ा मकान होगा... एक कार होगी... दो रसोइये होंगे... दो-चार बच्चे होंगे... स्वीमिंगपूल होगा... सुन्दर बगीचा होगा...''

दोस्त : ''सुंदर बगीचा होगा... स्वीमिंगपूल होगा तो तुम मुझे तैरने के लिए बुलाओगे ?''

बुद्धू हलवाई : ''वह मैं अभी नहीं कह सकता।''

दोस्त : ''अच्छा... कार में घुमाने तो ले चलोगे ?''

बुद्धू हलवाई : ''वह तो मैं अभी नहीं कह सकता। फिर अपना हेलिकाप्टर खरीदूँगा । बड़ी कंपनी डालूँगा... परदेश में भी कंपनी डालूँगा और मेरा चारों ओर नाम होगा। सुंदर-सुंदर गादी-तकिये होंगे। अभी तो भले ऐसे ही आया हूँ। एक साधारण जमाई की नाईं जी रहा हूँ लेकिन मेरे भी वे दिन आयेंगे।''

दोस्त : ''वे दिन आयेंगे तो तू मुझे बुलायेगा तो सही ?''

बुद्धू हलवाई : ''अभी कुछ नहीं कह सकता। गर्मियों के दिन होंगे... ए. सी. चलेगी। ठंडी-ठंडी आईसक्रीम खाऊँगा... बच्चों के साथ खिलवाड़ करूँगा।''

दोस्त : ''तो आईसक्रीम के समय मुझे बुलाओगे ?''

तब बुद्धू हलवाई खीजकर बोला : ''कैसा मूर्ख आदमी है ! तू अपने घोड़े दौड़ा, मैं अपने दौड़ा रहा हूँ। तू दूसरे के घोड़े पर क्यों चढ़ता है ? मैं अपनी कल्पना के घोड़े दौड़ा रहा हूँ। पागल कहीं के ! तू अपने घोड़े दौड़ा। मेरे घोड़े पर क्यों हावी हो जाता है ?''

आदमी शास्त्र सम्मत होकर, सादगी और संयम से रहकर आशाओं को पूरी करे, मन के संकल्प-विकल्पों को काटता रहे और आत्मा में टिक जाये तो वह आशारहित पद में, आत्मपद में स्थित हो जाता है। फिर तो उसके आगे संसारियों की मनोकामनाएँ भी पूरी होने लगती हैं।

अब ज्ञान की दृष्टि से देखो तो वह जो कल्पना के घोड़े दौड़ाता है वह सबका सब हो जाने पर भी क्या सुखी रहेगा ? गर्मी लगी तो ए. सी. चालू कर दिया। ऐसे लाखों लोग मिलेंगे जिनके पास रहने को मकान है, धन है, कार है, क्या वे लोग सुखी हो गये ? यह बाहर की चीजें प्राप्त करके सुखी होने की जो आशा है वही आदमी को गुलाम बनाती है। इन आशाओं को बढ़ाना, इन आशाओं के पीछे घूमना मानो हाथ-पैरों में हथकड़ियाँ डालना है। प्रारब्ध-वेग से जितना अन्न-जल मिलना होगा मिल जायेगा। आप अपना पुरुष-प्रयत्न करो लेकिन इन चीजों में सुख की जो इच्छा है वह इच्छा आदमी को जन्म-मरण के चक्कर में डालती है और वही इच्छा आदमी को दर-दर झुकाती है, गुलामी कराती है।

अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करने के लिए अपने से उच्च पुरुषों की निगाहों में रहना चाहिए।

अभिमानी औरंगजेब के पास बलिराम नाम का एक मंत्री काम करता था। एक बार उसने कुछ कागजात लाकर रखे और अभिवादन किया। अभिमानी औरंगजेब के दरबार का यह नियम था कि कोई भी आदमी आये और अभिवादन करे परंतु जब तक औरंगजेब कहे नहीं कि बैठो, तब तक कोई बैठ नहीं सकता। बलिराम कागजात ले आया था और अभिवादन करके मुस्कुरा रहा था। अभिमानी औरंगजेब कहीं और देखने में मशगूल था। बलिराम दो मिनट, पाँच-दस मिनट हाथ जोड़कर खड़ा रहा लेकिन औरंगजेब ने ध्यान ही नहीं दिया, बैठने तक को नहीं कहा।

यह प्रकृति का अकाट्य सत्य है कि जब तुम ईश्वर का भरोसा छोड़कर किसी राजा या साहब का भरोसा करोगे तो तुम्हारा वह भरोसा हटा दिया जायेगा। ईश्वर के सिवाय कहीं भी तुम सहारा खोजोगे अपने सुख का, अपनी सफलता का तो वह सहारा तुमको जरूर धोखा देगा। यदि ईश्वर को ही आधार बनाओगे तो बच्चे भी सेवा करेंगे, मित्र भी वफादारी करेंगे लेकिन जो प्रेम परमात्मा से करना चाहिए वह अगर मित्र पर उड़ेल दिया तो मित्र धोखा देगा। या तो वह चला जायेगा या तुमसे विपरीत व्यवहार करेगा। जो प्रेम परमात्मा से करना चाहिए वह अगर पत्नी से, पत्नी के शरीर से किया तो वह पत्नी धोखा देगी। वस्तु से, संबंधों से प्रेम किया तो उन वस्तुओं, संबंधों और व्यक्तियों के द्वारा विक्षेप (Disturbance) होगा, होगा और होगा ही। चाहे फिर कोई अपनेको कितना भी चतुर माने,

कितना भी होशियार माने । कितना भी बड़ा तपस्वी हो लेकिन बाह्य चीजों पर ज्यों-ही भरोसा किया त्यों-ही वे चीजें खिसकाई जायेंगी । जो आधार, जो भरोसा आत्मा पर करना चाहिए वह अगर दूसरी चीजों पर किया तो वे चीजें आपको जरूर धोखा देंगी । इसलिए अपने आश्रम का सूत्र है : ''ईश्वर के सिवाय कहीं भी मन लगाया तो अंत में रोना ही पड़ेगा ।''

यह प्रकृति का अकाट्य सत्य है कि जब तुम ईश्वर का भरोसा छोड़कर किसी राजा या साहब का भरोसा करोगे तो तुम्हारा वह भरोसा हटा दिया जायेगा । ईश्वर के सिवाय कहीं भी तुम सहारा खोजोगे अपने सुख का, अपनी सफलता का तो वह सहारा तुमको जरूर धोखा देगा ।

बलिराम को यह प्रकाश हुआ कि : 'अरे ! जो प्रेम, जो आदर ईश्वर को देना चाहिए, ईश्वर को करना चाहिए, वह मैं इस अभिमानी पुतले को कर रहा हूँ और वह मेरी ओर देखता तक नहीं !' धीरे-से कागजात रख दिये और बलिराम दबे पैर वहाँ से चल दिया । हस्तिनापुर (वर्त्तमान दिल्ली) में ढिंढ़ोरा पिटवा दिया कि जिसको जो आवश्यकता हो वह बलिराम के घर से ले जाये । सर्वत्यागयज्ञ की घोषणा कर दी । एकत्रित करने में तो समय लगता है लेकिन छोड़ने में कोई देर नहीं । उसके घर पर सब जरूरतमंद आ गये और थोड़ी ही देर में सब चीजों का सफाया होने लगा ।

औरंगजेब ने देखा कि बलिराम आया था वह कहाँ गया ?

''महाराज ! आपने उन्हें बैठने का संकेत नहीं किया । उन्होंने अभिवादन किया किन्तु आपने देखा तक नहीं । कुछ नाराज-सा चेहरा लेकर वे चले गये ।'' किसी दरबारी ने जवाब दिया ।

औरंगजेब : ''उसको बुलाओ । कहना जहाँपनाह बुला रहे हैं । शाही फरमान है ।''

आदमी गये शाही फरमान लेकर । तब तक तो बलिराम सब विसर्जन करके यमुना किनारे चले गये थे । आदमियों ने जाकर औरंगजेब को खबर दी कि बलिराम ने सर्वत्यागयज्ञ कर दिया । धोती के दो टुकड़े पहन-ओढ़कर साधुवेश बनाकर चले गये ।

औरंगजेब ने पूछा : ''कहाँ गया ?''

वे बोले : ''यमुना किनारे चले गये हैं ।''

औरंगजेब : ''उसको वहाँ से बुलाओ ।''

तब वजीर ने कहा : ''अब वे फकीर हो गये । जहाँपनाह का हुक्म अब उन पर लागू नहीं होगा । आपका हुक्म तब तक लागू था जब तक वे आपके मंत्री थे । अब उन्होंने आपकी नौकरी की आशा छोड़ दी है इसलिए आपका हुक्म उनके लिए कुछ अर्थ नहीं रखता ।''

औरंगजेब : ''अब क्या करना चाहिए ?''

वजीर : ''आप स्वयं पधारें तो ठीक रहेगा ।''

विचार-विमर्श के बाद औरंगजेब बलिराम के पास गया । उस समय बलिराम पैर पसारे हुए आकाश की तरफ एकटक निहारते हुए अपने परमात्मचिंतन में मस्त थे । औरंगजेब जाकर यह सोचते हुए खड़ा रहा कि 'यह बैठने को कहेगा या उठकर खड़ा हो जायेगा ।' लेकिन बलिराम न खुद उठकर खड़े हुए और न ही बैठने को कहा । आखिर औरंगजेब ने कहा :

'' तू मेरा गुलाम होकर रहा है । मेरा नमक खाया है ? कम-से-कम बैठने को तो कह । मैं जहाँपनाह स्वयं आया हूँ ।''

बलिराम : ''मैं आपका गुलाम नहीं था । गुलाम तो मैं अपनी आशाओं का था । मुझे रहने को अच्छा महल मिले और 'जहाँपनाह का वजीर हूँ' ऐसा कहलाऊँ यह आशा थी । इस प्रकार मैं अपनी आशाओं का गुलाम था, आपका नहीं । आपके पास जो तमाम लोग काम करते हैं वे भी आपके गुलाम नहीं हैं वरन् अपनी आशा-तृष्णाओं के कारण ही आपके गुलाम-से दिखते हैं ।''

औरंगजेब : ''यह सब करने से तुम्हें क्या लाभ होगा ?''

बलिराम : ''महाराज ! क्या लाभ होगा वह तो बाद में पता चलेगा परंतु जिसके आगे अभिवादन करके

खड़े होत थे और जो सामने देखते तक नहीं थे वे ही जहाँपनाह आज स्वयं चलकर मेरे पास आये हैं। मैंने अभी तो थोड़ी-सी आशा ही छोड़ी है, अभी तो आशाओं के राम नहीं बने, आशाओं का दासत्व ही थोड़ा छोड़ा है, फिर भी आप अपना तख्त छोड़कर खुद मेरे पास आये हैं। अभी तो केवल इच्छाओं का थोड़ा-सा त्याग किया है। राम में अभी टिके नहीं हैं फिर भी जहाँपनाह को खुद आना पड़ा है।''

यह सारा जगत आशा-तृष्णाओं से बँधा है। 'मैं कौन हूँ' यह जान लो तो आशाओं के राम बन जाओगे।

इच्छाएँ होती कैसे हैं ? आँख देखती है, कान सुनते हैं, नासिका सूँघती है, जीभ चखती है। इन्द्रियों पर प्रभाव बाहर की चीजों के आकर्षण से होता है और मन उनके साथ सहमत होता है। बुद्धि में यदि ज्ञान-वैराग्य है तो इन्द्रियाँ विषयों की आशा कराएँगी किन्तु बुद्धि विषयों के परिणामों का ज्ञान देगी। जब परिणाम का ज्ञान होगा तो आशाएँ कम होती जाएँगी। जो आपके जीवन में अत्यंत जरूरी है वह करोगे तो आशाओं के दास नहीं, आशाओं के राम हो जाओगे। जैसी इच्छा हुई, आशा हुई वैसा करने लगोगे तो आशाओं के दास बन जाओगे।

जो किसीके भरोसे सुखी होना चाहता है वह आशाओं का गुलाम है और जो केवल ईश्वर के भरोसे रहना चाहता है, रामरस में तृप्त होना चाहता है वह आशाओं का स्वामी है।

मन में कुछ आया और वह कर लिया तो इससे आदमी अपनी स्थिति से गिर जाता है लेकिन शास्त्र सम्मत होकर, सादगी और संयम से रहकर आशाओं को पूरी करे, मन के संकल्प-विकल्पों को काटता रहे और आत्मा में टिक जाये तो वह आशारहित पद में, आत्मपद में स्थित हो जाता है। फिर तो उसके आगे संसारियों की मनोकामनाएँ भी पूरी होने लगती हैं।

गंगा पापं शशि तापं दैन्यं कल्पतरूस्तथा।
पापं तापं च दैन्यं च घ्नन्ति सन्तो महाशया॥

'गंगा पाप को हरती है, चन्द्रमा ताप को हरता है और कल्पवृक्ष दरिद्रता को हरता है किन्तु पाप, ताप और दरिद्रता तीनों को संत पुरुष हर लेते हैं।'

गंगा में स्नान करने से शरीर शीतल होता है लेकिन आशारहित पुरुषों के निकट बैठने से अपना हृदय शीतल होने लगता है। चन्द्रमा बड़ा शीतल है लेकिन हृदय की तपन उससे नहीं मिटती। किन्तु इच्छारहित पुरुष के निकट बैठने से हृदय की तपन मिटती है। जिनकी आशाएँ नष्ट हो जाती हैं उनके सामने प्रकृति अपने रहस्य खोलने लगती है। अगर वे चाहें तो न पढ़े हुए ग्रंथों के और न पढ़े हुए शास्त्रों के रहस्य भी थोड़ा-सा दृष्टिपात करते ही प्रगट होने लगते हैं। दूसरों के मन के विचार भी वे जान सकते हैं। देवताओं की असलियत उनके आगे प्रकट होने लगती है। आशा-तृष्णा न होने से संकल्प-विकल्प शांत होने लगते हैं।

कबीरजी कहते हैं : ''जिसने आशा का त्याग किया वह जगत का स्वामी हुआ और जो आशाओं का दास हुआ, जगत उसका स्वामी हो गया।''

कबीरा जोगी जगतगुरु, तजे जगत की आस।
जो जग की आशा करे, जगत गुरु वह दास॥

'मेरी पूजा हो... मेरा मान हो...' - यह जो इच्छा है वह आपको पूजने योग्य नहीं बनायेगी, मानयोग्य नहीं बनने देगी। मान पाने की जब तक इच्छा रहेगी तब तक आपको मान नहीं मिलेगा और अगर मिला तो वह टिकेगा नहीं। बाहर के सुख की इच्छा छोड़ते ही सुखद पदार्थ आपके पास मंडराने लगेंगे। मान देनेवाले आपके इर्दगिर्द हाजिर हो जायेंगे। लेकिन आप ऐसा मत सोचो कि 'मुझे मान मिले..., मैं मान की इच्छा छोड़ता हूँ...' ऐसा भाव है तो गहराई में मान की इच्छा रहेगी। इच्छित पदार्थ तब तक नहीं मिलता जब तक उसकी इच्छा-वासना लगी रहती है। इच्छित पदार्थ पाने की इच्छा छोड़ दो तो इच्छित पदार्थ अपने-आप आपके पास आ जायेंगे।

चाह चमारी चूहड़ी, अति नीचन की नीच।
तू तो पूरण ब्रह्म था, जो चाह न होती बीच॥

धन की उपयोगिता एक बात है, धन के आँकड़े बढ़ाना दूसरी बात है। धनी धन के आंकडे बढ़ाते-

बढ़ाते मर जाता है। 'इतना धन हो जायेगा तब मैं सुखी हो जाऊँगा...' इस आशा में लोग मरे जा रहे हैं। 'इतनी सत्ता हो तब मैं सुखी होऊँगा... इतने बच्चे होंगे और मेरी सेवा करेंगे तब मैं सुखी होऊँगा...' इन आशाओं ने हमें नोंच डाला है। जो किसीके भरोसे सुखी होना चाहता है वह आशाओं का गुलाम है और जो केवल ईश्वर के भरोसे रहना चाहता है, रामरस में तृप्त होना चाहता है वह आशाओं का स्वामी है। आशा का जो स्वामी हो जाता है उसका जीवन धन्य हो जाता है।

तुच्छ आशाओं को दूर करने के लिए भगवत्प्राप्ति की आशा रखनी चाहिए। कोई कहेगा : 'भगवत्प्राप्ति की आशा भी तो आशा है, वह भी तो इच्छा है।' हाँ, वह इच्छा तो जरूर है लेकिन और इच्छाओं को मिटाने के लिए भगवत्प्राप्ति की इच्छा है। वह इच्छा में नहीं गिनी जाती। वह निष्काम हो जाती है। इसीलिए शास्त्र कहते हैं कि जो कुछ भी कर्म करो, ईश्वर की प्रीति के लिए करो।

जिनकी आशाएँ नष्ट हो जाती हैं उनके सामने प्रकृति अपने रहस्य खोलने लगती है। आशा-तृष्णा न होने से संकल्प-विकल्प शांत होने लगते हैं।

पतिव्रता स्त्री का सामर्थ्य क्यों बढ़ता है ? क्योंकि उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं। पति की इच्छा में उसने अपनी इच्छा मिला दी। सत्‌शिष्य का सामर्थ्य क्यों बढ़ता है ? सत्‌शिष्य को ज्ञान क्यों अपने-आप स्फुरित हो जाता है ? क्योंकि सद्‌गुरु की इच्छा में वह अपनी इच्छा मिला देता है। शिष्य लाखों हो सकते हैं पर सत्‌शिष्य की संख्या कम होती है।

सत्‌शिष्य वह है जो गुरु की परछाईं बन जाये, अपने को गुरु में पूरा ढाल दे। उसको ज्यादा कुछ नहीं करना पड़ता। तोटकाचार्य शंकराचार्य के ऐसे सत्‌शिष्य थे और कबीरजी के ऐसे सत्‌शिष्य थे सलुका-मलुका।

सती और सत्‌शिष्य को वह सामर्थ्य प्राप्त होता है जो योगियों को तमाम प्रकार की कठिन योगसाधना करने के बाद भी मुश्किल से प्राप्त होता है। योगसाधना करने के बाद जो उनकी अवस्था आती है वह सती और सत्‌शिष्यों को सहज में ही प्राप्त हो जाती है। सत्‌शिष्य अपनी इच्छा गुरु की इच्छा में मिला देता है। पतिव्रता स्त्री अपनी इच्छा पति की इच्छा में मिला देती है।

कोई सोचेगा : 'यदि गुरु की इच्छा में अपनी इच्छा मिला दो तो गुरु की भी तो इच्छा हुई और जब तक इच्छा है तो गुरु नहीं...।' हाँ, गुरु के अंदर इच्छा तो है लेकिन वह इच्छा कैसी है ? गुरु की इच्छा ब्रह्माकार, ईश्वराकार वृत्ति है। गुरु इच्छा के दास नहीं, इच्छाओं के स्वामी हैं। उनकी इच्छा व्यवहार काल में दिखती है लेकिन अंतःकरण में उस इच्छा की सत्यता नहीं होती। गुरु की इच्छा शिष्य के लिए कैसी होती है ? गुरु की इच्छा होती है कि शिष्य उन्नत हो। जैसे पिता की इच्छा पुत्र की उन्नति की ही हो सकती है। अतः गुरु की इच्छा में अपनी इच्छा मिला देने से शिष्य का कल्याण हो जाता है।

अपनी इच्छाओं को नियंत्रित करने के लिए अपने से उच्च पुरुषों की निगाहों में रहना चाहिए। अपनी इच्छा पूरी करने से साधक की साधना में बरकत नहीं आती। कबीरजी ने कहा है :

मेरो चिन्त्यो होत नाहीं, हरि को चिन्त्यो होय।
हरि को चिन्त्यो हरि करे, मैं रहूँ निश्चिन्त ॥

२४ घंटे... केवल २४ घंटे यह निर्णय कर लो कि 'मेरी कोई इच्छा नहीं... जो तेरी मरजी हो वह सब स्वीकार है ...' तो आपको जीने का मजा आ जाएगा।

साधारण आदमी और संत में यही फर्क होता है कि संत बाधित इच्छा से कर्म करते हैं, इच्छारहित कर्म करते हैं। अतः उनके कर्म शोभा देते हैं और साधारण आदमी इच्छाओं से प्रेरित होकर कर्म करते हैं।

धन किसलिए है चाहता, तू आप मालामाल है।
सिक्के सभी जिससे बने, तू वह महा टँकसाल है ॥
चाह न कर, चिन्ता न कर, चिन्ता ही बड़ी दुष्ट है।
है श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ तू मगर चाह करके भ्रष्ट है ॥

हे मानव ! तू श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है। किन्तु आशा

(शेष पृष्ठ २१ पर)

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

गुरु की पसंदगी

संत दादू पूर्ण ज्ञान को पाये हुए, जागे हुए महात्मा थे। वे गाँव-गाँव, शहर-शहर घूमते रहते थे और अपनी अहैतुकी करुणा-कृपा बरसाकर अज्ञान-निद्रा में सोये हुए को ज्ञान-भक्ति का उपदेश देकर जगाते रहते थे। किसी गाँव में रहते हुए एक बार उन्हें ऐसा लगा कि वे एक ही जगह पर ज्यादा समय से रुके हुए हैं। इसलिए शिष्यों को, भक्तों को कुछ कहे बिना ही वे एकांत जंगल की ओर निकल पड़े।

उन्होंने जंगल का कुछ रास्ता तय किया तब सामने दूसरा गाँव नजर आने लगा। उनके आगे बढ़ते कदम वहीं पर रुक गये। उन्हें लगा कि एक गाँव तो छोड़ा, अब और दूसरा पकड़ने की अपेक्षा तो जंगल में निवास ही अच्छा है। एकांत भी मिलेगा और शान्ति से ईश्वर का भजन करने का मौका भी मिलेगा।

सूरज, संत और हीरा क्या किसी आवरण से ढँक सकते हैं ? देखते-ही-देखते संत की सुवास आसपास के इलाके में फैल गई।

संत दादू इतने अपरिग्रही थे कि पेड़ के नीचे चुपचाप बैठे रहते थे। कंदमूल, फल आदि जो कुछ मिलता वह खा लेते और नाम-जप या ध्यान-समाधि में लीन रहते थे। आसपास के गाँव के लोग सुबह-शाम उनके दर्शन के लिए आ जाते थे। उन लोगों के अति आग्रह के कारण दादू उनको कुछ उपदेश देते थे। लोग जी-भरकर उनकी अमृतवाणी का लाभ लेते और फिर अपने-अपने स्थान पर चले जाते। अगर दो आदमी सत्संग सुनने आते तो दूसरी बार वे सत्संगरसिक श्रोता दूसरे बारह जनों को साथ में लेकर आते। ऐसा करते-करते दादू का भक्त-परिवार इधर भी दिन दूना, रात चौगुना बढ़ता चला गया। दूर-दूर तक उनकी कीर्ति फैलती गई।

ऐसे में पास के किसी गाँव के मुखिया को पता चला कि जंगल में महात्मा दादू पधारे हैं। मुखिया बाहर से तो बड़ा कठोर दिखनेवाला था लेकिन उसके अंतर की अतल गहराई में भक्ति की धारा बहने को आतुर थी। शायद बाहर की कठोरतावाला स्वभाव ही पत्थर बनकर भक्ति की उस स्निग्ध धारा को रोक रहा था।

न जाने क्यों, एक बार उसके हृदय में ऐसा भाव उमड़ पड़ा कि आज तो संत की मुलाकात करने के लिए जाना ही है। अगर वे सच्चे संत हैं तो गुरुपद पर उनकी स्थापना करूँगा और ढोंगी संत होंगे तो मिनटों में ही वहाँ से रवाना कर दूँगा। उन्हें इस जंगल में से भगा दूँगा। ऐसा सोचकर अपना अति प्यारा घोड़ा लेकर तत्काल वह जंगल की ओर निकल पड़ा।

काँटे उठानेवाले के शरीर पर चाबुक के निशान उभर आये और खून की धारा बह निकली।

अभी तो पूरा प्रभात भी नहीं हुआ था। जंगल से घास काटकर बेचनेवाली स्त्रियाँ और लकड़हारों का आवागमन भी नहीं था। इसलिए उस संत के विषय में कुछ पूछना हो तो किससे पूछें ? - ऐसी दुविधा में पड़ा हुआ वह एक ओर खड़ा था।

इतने में कुछ ही दूरी पर जमीन पर से काँटे उठाता हुआ एक फटेहाल आदमी दिखाई दिया। मुखिया घोड़े को उस तरफ मोड़कर उसके पास पहुँच गया। घोड़े पर बैठे-बैठे ही उसने पूछा : ''अरे ! संत दादू कहाँ रहते हैं, कुछ पता है तुझे ?''

उस आदमी ने कुछ जवाब नहीं दिया।

मुखिया को लगा कि या तो इसने सुना नहीं है या इसने मुझे पहचाना नहीं है। इसलिए उसने जरा जोर से कहा :

''अरे बहरा ! सुनता नहीं है क्या ? कबसे पूछ रहा हूँ कि संत दादू कहाँ रहते हैं ?''

उस काँटे उठानेवाले ने तो कुछ जवाब देने के बदले मार्ग में बिखरे हुए काँटों को उठाना चालू ही रखा। इससे मुखिया क्रोध से आगबबूला हो उठा । घोड़े को फटकारने का चाबुक उसके शरीर पर फटकारते हुए कहा :

"आदमी दो-चार आने की मटकी लेने जाता है तब भी उसे चारों ओर से कितने टकोरे मारकर जाँच लेता है। बाद में खरीदता है। तू तो गुरु की पसंदगी करने निकला था तो यह साँचा ठीक है कि नहीं है - इसकी जाँच तूने चाबुक से कर ली तो इसमें क्या बुरा किया ?"

''अरे मूर्ख ! कुछ सुनता है या नहीं ?''

जवाब में वही मौन... फिर तो भाई ! मुखिया का क्रोध ज्वालामुखी की तरह भड़क उठा । क्रोध के आवेश मेंआकर उसने सटासट चाबुक फटकार दिये।

उस काँटे उठानेवाले के शरीर पर चाबुक के निशान उभर आये और खून की धारा बह निकली । कहीं-कहीं तो लाल-काले चकत्ते भी पड़ गये किन्तु वह मौन ही रहा। किये हुए संकल्प से किसी भी कीमत पर नहीं डिगना तो नहीं डिगना, फिर चाहे कुछ भी हो जाये।

किसी पागल से उसका पल्ला पड़ा है - ऐसा समझकर मुखिया ने अपना घोड़ा आगे बढ़ाया। इतने में सामने से मुखिया का परिचित एक लकड़हारा आता हुआ दिखाई दिया।

''राम राम मुखिया !'' कहता हुआ वह मुखिया के पैरों पड़ा।

''राम राम ! अरे, यहाँ कहीं पर संत दादू रहते हैं, दादू ?''

''हाँ हाँ मुखियाजी ! रहते हैं न। हम लोग लकड़ियाँ काटते हैं तब जो काँटे, झाड़-झंखाड़ गिरे हुए होते हैं उन्हें दूसरे दिन सुबह से लेकर दोपहर तक उठाते रहते हैं। जंगल के रास्ते साफ-सुथरे करते रहते हैं । वे आपको यहीं-कहीं मिल जाने चाहिए।''

मुखिया का क्रोध ज्वालामुखी की तरह भड़क उठा। क्रोध के आवेश में आकर उसने सटासट चाबुक फटकार दिये।

गजब हो गया ! मुखिया पस्त हिम्मत हो गया। उसे हुआ कि यह तो भयानक भूल हो गई। भूल से भी किये हुए क्रूर कर्म के पश्चात्ताप ने उसके अंतर में पैदा हुई क्रोधाग्नि को ठंडा कर दिया। वह वहाँ से उल्टे पाँव लौट पड़ा और घोड़े को एक ओर छोड़कर सीधा दौड़ पड़ा।

संत के चरणों में गिरकर वह बोल उठा : ''मुझे माफ करो। मुझ मूर्ख ने, अज्ञानी ने आपको नहीं पहचाना।''

''अरे भाई ! अभी तक मैंने खुद को ही, अपने-आपको ही पूरा नहीं पहचाना है तो फिर तूने मुझे नहीं पहचाना इसमें क्या आपत्ति है ? अब तू ही बता, कौन किसको माफ करे ?''

''बाबाजी ! आप मेरे गुरु बनें- ऐसी विनती करने आया हूँ।''

''इसकी क्या जरूरत है ?''

''जरूरत है, बाबाजी !'' शर्म के मारे नजरें झुकाकर उसने कहा : ''मुझ मूर्ख के मन में आया था कि आपको जरा नाप लूँ लेकिन आपको नापने का मेरा नाप (गज) बिल्कुल छोटा पड़ गया। नापनेवाला ही नापा गया। मुझे माफ करो। मेरी बेअदबी के लिये, आपके साथ किये हुए दुष्ट व्यवहार के लिये मैं क्षमा चाहता हूँ, बाबाजी !''

''भाई ! तुझे भले इसमें गलती दिखती हो लेकिन मेरी दृष्टि से इसमें गलती जैसा कुछ है ही नहीं। आदमी दो-चार आने की मटकी लेने जाता है तब उसे भी चारों ओर से कितने टकोरे मारकर जाँच लेता है । बाद में खरीदता है । तू तो गुरु की पसंदगी करने निकला था तो यह साँचा ठीक है कि नहीं है- इसकी जाँच तूने चाबुक से कर ली तो इसमें क्या बुरा किया ?''

संत की अमृतवाणी की धारा बहती जा रही थी। मुखिया के अंतर का अंधकार उस अमृतधारा में कहाँ

विलीन हो गया उसका उसे पता ही नहीं चला और एक भूला हुआ पथिक कुपथ को त्यागकर अमरपथ का प्रवासी बन गया। अपने को संत दादू का शिष्य कहलाने में धन्यता का अनुभव करने लगा।

*

मनोजय

राजस्थान की प्रसिद्ध महात्मा भूरीबाई के जीवन का यह एक प्रेरक प्रसंग है :

वैधव्य की अवस्था में भूरीबाई एक ताँगेवाले के घोड़े के लिए अनाज पीसती थीं। उससे जो कमाई होती उसी कमाई से अपना गुजारा करतीं एवं साधु - संतों को भी भोजन करवाती थीं।

एक बार भूरीबाई को खूब तीव्र ज्वर हुआ। बिस्तर पर से उठना तक संभव नहीं था। बुखार के कारण भोजन अच्छा भी नहीं लगता था। बुखार छः दिन तक रहा जिसकी वजह से ताँगेवाले के यहाँ घोड़े का दाना पीसने भी नहीं जा सकीं। पास में कुछ बचत भी न थी और कमाई न होने के कारण अब तो फूटी कौड़ी भी न बची थी।

बुखार मिटने पर भूख लगने लगी। घर के सब डिब्बों को टटोलने के बाद एक पैसा मिला जिससे कद्दू (कुम्हड़ा) खरीदकर, उबालकर खा लिया और दाना पीसने में लग गई। उस दिन जो कमाई हुई उससे केवल आटा ही खरीदा जा सका। आटे की रोटियाँ तो बना लीं किन्तु बुखार की अरुचि को दूर करने के लिए कुछ तीखा खाने की तीव्र इच्छा हो उठी। अकेली रोटी खाने का प्रयत्न तो किया किन्तु सूखी रोटी गले से नीचे ही नहीं उतर रही थी। घर में दूसरे मिर्च - मसाले तो थे नहीं। इस प्रकार लगातार तीन दिन तक मन में मिर्च की चटनी जैसा कुछ तीखा खाने की तीव्र इच्छा होती रही। भोजन करने बैठे और मिर्च याद आ जाये ....

लगातार तीन दिन तक मिर्च की याद के द्वारा सताये जाने के बाद भूरीबाई ने निश्चय कर लिया कि अब इस मिर्चवाली वृत्ति को मारना ही पड़ेगा। वे जब ऐसा निश्चय करके भोजन करने बैठीं तो पुनः अकेली सूखी रोटी को गले से नीचे उतारना मुश्किल हो गया और उन्हें उल्टी जैसा लगने लगा। रह-रहकर मिर्च का दृश्य आँखों के सामने आकर खड़ा होने लगा।

उस वक्त एक बहन भूरीबाई के पास ही बैठी हुई थी। भूरीबाई ने उस बहन से गाय का गोबर लाने के लिए कहा। उस बहन को लगा कि भूरीबाई को घर लीपने के लिए गाय का गोबर चाहिए। अतः वह गोबर ढूँढ़कर ले आयी और भूरीबाई के पास लाकर रख दिया।

भूरीबाई ने उसमें से थोड़ा-सा गोबर लिया और रोटी पर चुपड़कर रोटी खाने लगीं। वह बहन तो दंग रह गयी यह देखकर एवं बिलख-बिलख कर रोने लगी। उसके मन में हुआ कि 'मैं गोबर लाई इसीलिए भूरीबाई को खाना पड़ रहा है...।' फिर उसने भूरीबाई से प्रार्थना की : '' मैं अपने घर से चटनी, सब्जी अथवा मिर्च लेकर आती हूँ।''

किन्तु भूरीबाई ने तो प्रेमपूर्वक खाते-खाते कहा :

'' सूखी रोटी गले से नहीं उतर रही थी इसलिए गोबर चुपड़कर खा रही हूँ। इस मिर्च-मसाले की इच्छावाले मन को आज इसी तरह रोटी खिलानी है। तू नाहक परेशान मत हो।''

इस प्रसंग के बाद भूरीबाई को जीवन में फिर कभी मनोजय करने के लिए कष्ट नहीं उठाना पड़ा। सच ही है : 'जिसने मन जीता उसने जग जीता।'

*

सेवाधारियों एवं सदस्यों के लिए विशेष सूचना

(१) कृपया अपना सदस्यता शुल्क या अन्य किसी भी तरह की नगद राशि रजिस्टर्ड या साधारण डाक द्वारा न भेजा करें। इस माध्यम से कोई भी राशि गुम होने पर आश्रम की जिम्मेदारी नहीं रहेगी। अतः अपनी राशि मनीआर्डर या ड्राफ्ट द्वारा ही भेजने की कृपा करें।

(२) 'ऋषि प्रसाद' के नये सदस्यों को सूचित किया जाता है कि आपकी सदस्यता की शुरुआत पत्रिका की उपलब्धता के अनुसार कार्यालय द्वारा निर्धारित की जाएगी।

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

बाह्य परिस्थितियों के प्रभाव से परे...

तुम्हारे चित्त पर संसारी अनुकूलता-प्रतिकूलताओं का, आकर्षण-विकर्षणों का प्रभाव न पड़े तो चित्त शुद्ध रहेगा । शुद्ध चित्त में संकल्प होते ही प्रकृति अनुकूल हो जाती है और यही कारण है कि महापुरुषों के जीवन में चमत्कार होते हैं ।

मनुष्य पर संसार की बाह्य परिस्थितियों का जितना कम प्रभाव पड़ता है उतना ही वह अधिक ऊँचाई पर होता है, महान् होता है और संसार की बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव चित्त पर जितना अधिक पड़ता है उतना ही मनुष्य नीचे गिरता है, तुच्छ होता है । मान-अपमान का असर भी उन्हीं को अधिक होता है जिनमें अहंकार होता है । जिनका अहंकार गलित हो गया है उनको चाहे लाखों लोगों से मान मिल जाये तो भी कोई फर्क नहीं पड़ता और लाखों लोगों के द्वारा अपमान हो जाये फिर भी उनके चित्त की समता में कोई आँच नहीं आती क्योंकि उनके चित्त पर प्रकृति की बाह्य परिस्थितियों का तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता ।

श्री रंगअवधूतजी महाराज (नारेश्वरवाले) अमदावाद की किसी सड़क से गुजर रहे थे । लम्बी दाढ़ी, लम्बे बाल और गरमी के कारण सिर पर टोपी भी ऐसी थी जिससे उनकी वेशभूषा कुछ विचित्र ही लग रही थी । यह देखकर कुछ रंगरूट बच्चों ने उनका मजाक उड़ाना शुरू कर दिया : 'नाटक की लुगाई... नाटक की लुगाई...' कहते हुए उनके पीछे पड़ गये । यह देखकर श्री रंगअवधूतजी महाराज भी 'नाटक की लुगाई... नाटक की लुगाई...' कहते हुए खुद भी हँसने लगे ।

एक सज्जन व्यक्ति ने देखा कि ये मूर्ख बच्चे एक संत-महापुरुष का मखौल उड़ा रहे हैं, यह ठीक नहीं । अतः उसने पीछा करते हुए उन लड़कों को वहाँ से भगा दिया और स्वयं श्री रंगअवधूतजी के चरणों में गिर पड़ा और बोला :

''महाराज ! ये लड़के अनजान थे...''

श्री रंगअवधूतजी बोले : ''कोई बात नहीं । ये लड़के ऐसे थे, वैसे थे; कहकर दुःखी क्यों होना ? दुःखी होना न होना यह अपने हाथ की बात है - यह जान ले, भैया !''

श्री रंगअवधूतजी के चित्त की समता देखकर वह व्यक्ति अहोभाव से भर गया ।

श्री रंगअवधूतजी महाराज आश्रम में रहते हैं और लोग आदर करते हैं तब तो उनके चित्त में शांति है ही, उस व्यक्ति ने प्रणाम किया तब भी उनका चित्त शांत ही था और बच्चे मजाक उड़ा रहे थे तब भी उनके चित्त में शांति ही शांति थी । क्यों ? क्योंकि संसार की समस्त परिस्थितियों के प्रभाव से मुक्त होकर उन्होंने आत्मशांति प्राप्त कर ली थी ।

> *''आज तक तूने जितनी खीर खिलाई है वह तुझे पूरी की पूरी वापस करता हूँ । दूध अलग और चावल अलग । जा, ले जा ।''*

वे क्या छोड़ गये ?

दो लड़के काम से छूटकर शाम को घूमने निकले थे । कुछ दूर चलकर किसी स्थान पर बैठकर आपस में गपशप करने लगे । एक ने कहा : ''कुछ दिन पहले मेरे दादाजान मर गये लेकिन वे अपने पीछे बहुत कुछ छोड़ गये ।''

वह था तो झोंपड़ी में रहनेवाला पर उसने गप लगाई।

दूसरे लड़के ने पूछा : ''कितना छोड़ गये ?''

''पचास हजार चाँदी के रुपये... उसका सत्तर गुना गिन लो।''

''हूँ ऽऽऽ... इसमें क्या ?''

''तो क्या तेरे दादाजी लाख रूपये छोड़ गये ?''

''इससे भी ज्यादा।''

''दस लाख ?''

''हूँ ऽऽऽ... इससे क्या ?''

''अरे ! अपन दोस्त हैं। मैं तुझे कुछ तो जानता हूँ। मैं तेरी बात पर विश्वास करता हूँ कि तू झूठ नहीं बोलेगा। अब सच बता, कितना छोड़ गये ? पच्चीस-पचास लाख ?''

''मैं हिसाब नहीं लगा सकता इतना छोड़ गये हैं।''

''तो क्या दो-पाँच करोड़ छोड़ गये हैं ?''

''नहीं रे...''

''तो पच्चीस-पचास करोड़ छोड़ गये ? आखिर बता तो सही ?''

''मेरे दादाजी गये तो सारी दुनियाँ की संपत्ति छोड़कर गये, यार !''

यह तो गपशप की बात हुई लेकिन सीख लेना चाहें तो इसमें से बहुत कुछ सीख ले सकते हैं।

जो इस दुनियाँ से जाता है उसे न चाहते हुए भी सारी दुनियाँ को छोड़कर जाना ही पड़ता है। मरकर दुनियाँ को छोड़कर जाना पड़े उससे तो आप जीते-जी दुनियाँ को छोड़ दो।

जीते-जी दुनियाँ को कैसे छोड़ें ?

शरीर को 'मैं' मानने की बेवकूफी छोड़ दो और शरीर के संबंधों को भीतर से मेरा मानना छोड़ दो। दुनियाँ में आप इस तरह रहोगे तो जीते-जी दुनियाँ छूट जाएगी। फिर बार-बार मरना नहीं पड़ेगा। शरीर पहले था नहीं और बाद में रहेगा नहीं। यह तो पक्की बात है। शरीर के संबंध भी शरीर के छूटने से छूट ही जाएँगे। संसार में रहो, संसार के संबंधों को सँभालो, कोई मना नहीं है लेकिन आसक्तिरहित होकर सँभालो। संसार से चिपक-चिपककर आयुष्य व्यर्थ मत गँवा दो।

दुनियाँ का सदा से यही कारखाना है।
कल था किसीका और आज किसीका जमाना है॥

दुनियाँ का कारखाना ऐसे ही चलता आया है और चलता रहेगा। दुनियाँ की वस्तु, दुनियाँ की परिस्थिति से चिपकने की जो आदत है उस आदत को वहाँ से हटाकर अंतर्यामी परमात्मा में लगा दो तो तुम्हारा तो बेड़ा पार हो जाएगा, तुम्हारी मीठी नजर जिन पर पड़ेगी वे भी परमानंद के अधिकारी होने लगेंगे।

*

संसार की बाह्य परिस्थितियों का जितना कम प्रभाव पड़ता है उतना ही वह अधिक ऊँचाई पर होता है और संसार की बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव चित्त पर जितना अधिक पड़ता है उतना ही मनुष्य नीचे गिरता है, तुच्छ होता है।

गुरु के सामर्थ्य की परीक्षा कभी न करें...

एक गृहस्थ ब्राह्मण था। साधु-संतों के प्रति उसकी खूब प्रीति थी किन्तु उसे जीवन में एक समर्थ सद्गुरु की कमी हमेशा खटकती थी। वह रोज विचार करता कि काश ! कोई समर्थ गुरु मिल जायें।

एक दिन उसने सुना कि कोई महा सिद्धयोगी गाँव के मंदिर में पधारे हैं। ब्राह्मण यह सुनकर सेवा और दर्शन के लिए मंदिर में पहुँच गया। खूब तेजस्वी एवं आभायुक्त योगी के दर्शन करके वह प्रभावित हुआ। वह उनके समक्ष साष्टांग दंडवत् प्रणाम करके बैठ गया। वे योगी थे बाबा गोरखनाथ। ब्राह्मण खूब निष्ठा से उनकी सेवा करने लगा। वह रोज बाबाजी के लिए खीर बनाकर ले आता। गोरखनाथजी का सत्संग सुनकर उसने मन-ही-मन निश्चय कर लिया कि ये ही मेरे गुरु हैं।

थोड़े समय तक वहाँ रहकर गोरखनाथजी गाँव छोड़कर जाने लगे तब वह ब्राह्मण भी उनके साथ

निकल पड़ा। गुरु की सेवा करना एवं रोज दोपहर को उन्हें खीर खिलाना... यही ब्राह्मण का नित्यक्रम हो गया।

कई वर्षों तक इस प्रकार सेवा करते-करते एक दिन उसके मन में विचार आ गया : 'यह तो मैंने कइयों के मुख से सुना है कि मेरे गुरु समर्थ हैं किन्तु मुझे तो ऐसा कोई अनुभव नहीं हुआ...' बस, ब्राह्मण के मन में यह विचार उठा तो फिर उसने ब्राह्मण का पीछा ही न छोड़ा।

शरीर को 'मैं' मानने की बेवकूफी छोड़ दो और शरीर के संबंधों को भीतर से मेरा मानना छोड़ दो। दुनियाँ में आप इस तरह रहोगे तो जीते-जी दुनियाँ छूट जाएगी। फिर बार-बार मरना नहीं पड़ेगा।

गोरखनाथजी तो अंतर्यामी थे। शिष्य के मन की बात जान गये। शिष्य को गुरु की सेवा निष्काम भाव से करनी चाहिए। गुरु के सामर्थ्य की परीक्षा करना यह तो अनधिकार चेष्टा कही जाएगी। यह सोचकर गोरखनाथजी ने शिष्य को सीख देने का निश्चय किया।

दोपहर में जब वह ब्राह्मण खीर लेकर आया तब गोरखनाथजी ने उसे सामने ही बैठने के लिए कहा। गोरखनाथजी ने खीर खाकर शिष्य से कहा : '' अब यहाँ दो गड्ढ़े खोद दे।''

शिष्य ने गुरु की आज्ञा के अनुसार दो गड्ढ़े पास-पास खोद दिये। जैसे ही गड्ढ़े तैयार हुए वैसे ही गोरखनाथजी ने पहले गड्ढ़े के पास जाकर वमन किया तो केवल दूध निकला और दूसरे गड्ढ़े के पास जाकर वमन किया तो केवल चावल निकले !

शिष्य देखता ही रह गया ! गोरखनाथजी बोले : ''आज तक तूने जितनी खीर खिलाई है वह तुझे पूरी की पूरी वापस करता हूँ। दूध अलग और चावल अलग। जा, ले जा।''

शिष्य को अपनी गलती का एहसास हुआ। वह गुरु के चरण पकड़कर, रो-रोकर क्षमायाचना करने लगा। वह बोला : '' गुरुदेव ! मुझे क्षमा कर दें। मैं अज्ञानी मूर्ख कैसे विचार कर बैठा ? कृपा करके मुझे निष्काम सेवा का आशीर्वाद दें।''

सच्चे हृदय से शिष्य द्वारा की गयी क्षमायाचना को गुरु गोरखनाथ ने स्वीकार कर लिया। ✻

(पृष्ठ १५ का शेष)

करके ही भ्रष्ट हो गया है। तेरा आत्मा तो सर्वश्रेष्ठ है।

मानव तुझे नहीं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, सद्ब्रह्म का तू वंश है।।
संसार तेरा घर नहीं, दो चार दिन रहना यहाँ।
कर याद अपने राज्य की, स्वराज्य निष्कंटक जहाँ।।

आशा करनी ही है तो राम की करो।

आशा तो एक राम की, दूजी आश निराश।

'ऐसे दिन कब आयेंगे कि मैं अपने राम स्वभाव में जगूँगा... सुख-दुःख में सम रहूँगा...? मेरे ऐसे दिन कब आयेंगे कि मुझे संसार स्वप्न जैसा लगेगा...? ऐसे दिन कब आयेंगे कि मैं अपने देह में रहते हुए भी विदेही आत्मा में जगूँगा...?' ऐसा चिंतन करने से निम्न इच्छाएँ शांत होती जायेंगी और बाद में उन्नत इच्छाएँ भी शांत हो जायेंगी। फिर तुम इच्छाओं के दास नहीं, आशाओं के दास नहीं, आशाओं के राम हो जाओगे।

ॐ... ॐ... ॐ...

क्रोध से बचो

हेरिस फ्लैचर ने कहा है :''क्रोध तथा चिंता इन्सान को केवल असमर्थ तथा निराश ही नहीं बनाते बल्कि इनके कारण तो कई इन्सान समय से पहले ही मर जाते हैं।''

अलबर्ट हूबार्ड ने कहा है : ''क्रोध का परिणाम सदा भयंकर होता है। नफरत, क्रोध और बदले की भावना डर के ही अलग-अलग रूप हैं और यह बहुत देर तक नहीं टिकते हैं। ठण्डे मन से और बहादुरी से इनका मुकाबला कीजिये और स्वयं को शक्तिशाली बना लीजिये।'' ॐ... ॐ... ॐ...

गम, चिरकालीन ईर्ष्या, चिंता आदि के कारण कई लोगों को पागल होते देखा गया है। इस प्रकार के विचारों से आदमी की अपनी वह शक्ति नष्ट हो जाती है जिससे वह अपने ऊपर होनेवाले आक्रमणों का मुकाबला करता है। ✻

गौमाता : अनवरतपोषिका

अन्न हि परम गावो देवानां परमं हविः।
स्वाहाकारवषट्कारौ गोषु नित्यं प्रतिष्ठितौ॥
सायं प्रातश्च सततं होमकाले महाद्युते।
गावो ददाति वै हौम्यमृषिभ्यः पुरुषर्षभ॥

गौवें ही सर्वोत्तम अन्न की प्राप्ति में कारण हैं। वे ही देवताओं को उत्तम हविष्य प्रदान करती हैं। देवयज्ञ और इन्द्रयाग- ये दोनों काम सदा गौओं पर ही अवलम्बित हैं। प्रातःकाल और सायंकाल सदा होम के समय ऋषियों को गायें ही हवनीय पदार्थ (घी आदि) देती हैं। माता के बाद मानव जाति का यदि कोई सच्चा पोषक है तो वह केवल गाय है। इसीलिए इसे गौमाता का दर्जा दिया गया है। यह मानव समाज को तीन प्रकार से पोषित करती है :

(१) पौष्टिक पदार्थ देकर मनुष्यों को पोषित करती है।

(२) खाद देकर पृथ्वी को पोषित करती है जिससे अन्न तथा फल आदि मिलते हैं।

(३) ईंधन देकर मानवसेवा करती है।

(१) पौष्टिक पदार्थ : गाय के अयन में समुद्र देव का निवास माना जाता है। भले ही यह बात हमें काल्पनिक लगे परन्तु हमारे ऋषि-मुनियों की मात्र यह कल्पना ही नहीं है बल्कि तथ्यपरक सत्य है। इसका विवेचन करने से तो लगता है कि गाय का अयन समुद्र से भी बड़ा है। पौराणिक कथाओं के आधार पर समुद्र-मन्थन से चौदह रत्न प्राप्त हुए थे परन्तु गाय के अयन में तो चौदह से भी अधिक पदार्थ मिलते हैं। इनमें खीस, बाजिन (खीस का पानी), दूध, दही, नवनीत, मट्ठा, क्रीम, घी, छैना, खोया, सप्रेटा, केसीन तथा दुग्धचूर्ण आदि प्रमुख हैं। ये सभी पदार्थ विभिन्न किस्म के पौष्टिक तत्त्व प्रदान करने के साथ अनेक रोगों की चिकित्सा में औषधि के रूप में भी प्रयोग किये जाते हैं। ऐसा माना जाता है कि गाय के दूध जैसा पौष्टिक, घी जैसा विषशोषक, मट्ठा जैसी औषधि तथा खीस जैसा रोगप्रतिकारक पदार्थ अन्य दूसरा कोई नहीं है। इनके सेवन करने से मनुष्य बलवान, बुद्धिमान, निरोगी, ओजस्वी तथा यशस्वी बनता है। हमारे अनेक ऋषि-मुनियों के ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जो जीवनभर मात्र गाय के एक गिलास दूध पर ही रहकर परम तेजस्वी एवं विद्वान बने। जीवन पर्यंत मात्र गाय का ही दूध पीने पर बड़े-से-बड़े विषधर सर्प का विष भी ऐसे व्यक्ति पर असर नहीं करता है। दूध की पौष्टिकता तथा गुणवत्ता के साथ-साथ गाय की उत्पादन-क्षमता का अनुमान लगाना भी सामान्य बात नहीं है। कामधेनु नस्ल की पाँच गायों के प्रमाण मिलते हैं जिनमें नन्दा, सुभद्रा, बहुला, सुरभि तथा सुशीला के नाम विख्यात हैं जो क्रमशः जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, वशिष्ठ तथा अमित नामक ऋषियों के पास थीं। इन ऋषियों के आश्रम में चाहे कितने ही अतिथि आयें, सभी तृप्त होकर ही जाते थे। इन गायों ने ऋषिकुलों को पोषित करने के साथ ही उनकी इतनी कीर्ति बढ़ाई जो आज तक उनके नाम को अमर बनाये हुए है। आज के युग में भी गाय विभिन्न उत्पादन देकर मानव जाति का पोषण कर रही है। इसके कुछ उत्पादन का वर्णन निम्नलिखित है :

खीस : गाय से प्राप्त उत्पादन में खीस एक मुख्य उत्पादन है। यह एक विशेष प्रकार का स्तन-स्राव है जो गाय ब्याने के तुरन्त बाद प्राप्त होता है। देखने में यह दूध के समान ही होता है परन्तु संरचना तथा गुणों

में बिल्कुल भिन्न होता है। गर्म करने पर यह तुरन्त फट जाता है। यह गाढ़ा, चिपचिपा, श्याम, कुछ पीले रंग का, स्वाद में नमकीन तथा विशेष प्रकार की गंध से युक्त होता है। गाय का खीस अत्यंत पौष्टिक, बलवर्धक, बुद्धिवर्धक तथा मृदुरेचक होता है।

दूध की अपेक्षा इसमें प्रोटीन तथा खनिज तत्त्वों की मात्रा बहुत अधिक होती है तथा लेक्टोज, वसा व पानी की मात्रा कम होती है। खीस में दूध की अपेक्षा केसीन की एल्व्यु मात्रा दोगुनी, ग्लोव्यूलिन की मात्रा १२-१५ गुनी तथा एल्यूमिनम की मात्रा ६ गुनी अधिक होती है। प्रथम खीस की वसा में कैप्रीलिक, कैप्रिक, वसीय अम्लों तथा विटामिन 'ए', 'बी-१', 'बी-२', तथा 'डी' की मात्रा अधिक होती है। प्रथम खीस की वसा में मक्खन की अपेक्षा ९ गुना कैरोटीन, ८ गुना विटामिन 'ए' और दो गुना विटामिन 'डी', 'सी' तथा 'बी' काम्प्लैक्स पाया जाता है। इनकी मात्रा नियमितरूप से कम होती जाती है। १०-१५ दिन के बाद सामान्य हो जाती है। सामान्य दूध की अपेक्षा खीस में खनिज तत्त्व भी अधिक होते हैं। लौह तत्त्व तो दूध की अपेक्षा १७ गुना अधिक होता है। इसके अतिरिक्त कैल्शियम, मैग्नीशियम, फास्फोरस तथा क्लोराइड्स भी अधिक मात्रा में होते हैं। एन्जाइम्स में केटलेज अधिक होता है। खीस हल्का दस्तावर है अतः पेट को साफ करता है। इसमें उपस्थित ग्लोव्यूलिन नामक प्रोटीन से रोग प्रतिकारक पदार्थ 'एन्टीबॉडी' बनती है। इसे खानेवालों में रोग-प्रतिकारक क्षमता उत्पन्न होती है। अधिक खनिज तथा विटामिन्स के कारण यह वृद्धिदर को बहुत बढ़ाता है। खीस का ऊर्जा तथा पोषणमान दूध की अपेक्षा अधिक होता है।

गौदुग्ध : गौदुग्ध पौष्टिक तत्त्वों का भण्डार है। इसमें जल ८७, वसा ३.८, प्रोटीन ४, शर्करा ५ तथा अन्य तत्त्व १.५ से २ प्रतिशत तक पाये जाते हैं। गाय के दूध में आठ तरह के प्रोटीन, ग्यारह तरह के विटामिन्स, बारह तरह के एन्जाइम्स, बीस तरह के खनिज, पाँच तरह के पिगमैन्ट्स तथा तीन तरह की दुग्ध गैसें पाई जाती हैं। प्रोटीन्स में केसीन, लैक्ट-एल्व्यूमिन, लैक्ट-ग्लोव्यूमिन, लैक्टोम्यूसीन, म्यूको प्रोटीन, लेक्टेनिन, प्रोटियोजेज तथा पैन्टोन्स होते हैं। विटामिन्स में विटामिन 'ए' एवं 'बी' प्रचुर मात्रा में होते हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि ये सारे तत्त्व तो भैंस तथा बकरी के दूध में भी पाये जाते हैं परंतु तत्त्वों का अनुपात, उनकी रचना तथा उनके गुण मात्र गाय के दुग्ध में ही सर्वश्रेष्ठ होते हैं। इसीलिए यह अन्य प्राणियों के दुग्ध से पौष्टिक तथा उत्तम माना जाता है। यह सभी तरह की उम्र (बाल्यावस्था, युवावस्था तथा वृद्धावस्था) एवं सभी अवस्थाओं (स्वस्थ, रोगी, गर्भवती महिला, धाय माता आदि) में, सभी ऋतुओं में तथा दिन में किसी भी समय में लिया जा सकता है। ऋतुओं तथा दिन के समयों में दूध पीने का प्रभाव अलग-अलग प्रकार का होता है। ऐसा पौष्टिक दूध देकर अनवरतरूप से गाय युगों-युगों से मानव जाति का पोषण कर रही है। गौदुग्ध में अनेक औषधीय गुण भी होते हैं जिनका वर्णन अलग से किया गया है।

बाजिन : यह खीस का पानी होता है। इसका रंग हल्का पीला-हरा-सा होता है। इसमें विभिन्न प्रकार के खनिज, विटामिन्स, एन्जाइम्स तथा पिगमैन्ट्स होते हैं। यह बहुत पाचक तथा रेचक होता है। रतौंधी, रिकेट्स, सूखा, स्कर्वी आदि रोगों से पीड़ित व्यक्ति के लिए अच्छा माना जाता है। यद्यपि इसमें पोषक तत्त्व कम होते हैं परन्तु रोगी तथा अशक्त लोगों के लिए यह अच्छे पोषक का कार्य करता है।

दही : सामान्यतः दूध को गर्म करके तथा गुनगुने दूध में थोड़ा दही डालकर उसे जमा दिया जाता है जिससे दूध में उपस्थित प्रोटीन जम जाती है तथा पानी अलग हो जाता है। इसे दही कहते हैं। इसका स्वाद लैक्टिक अम्ल के कारण हल्का खट्टा, कसैला होता है। यह बहुत ही गुणदायक तथा पौष्टिक पदार्थ माना जाता है।

नवनीत : दही को बिलोने से उससे नवनीत मिलता है जिसे लोनी, लवनी या मक्खन भी कहते हैं। यह बहुत ही चिकना, हल्के खट्टे स्वादवाला होता है। इसमें अधिकतर वसा तथा खनिज होते हैं। अल्प मात्रा में प्रोटीन भी रहता है। यह बहुत ही पौष्टिक तथा बलकारक है तथा भाग्यशाली व्यक्ति को ही नसीब होता है। (क्रमशः)

अमर शहीद गुरु तेगबहादुरजी

[शहीद दिन ४ दिसम्बर '९७ पर विशेष]

- पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू

धर्म, देश के हित में जिसने
पूरा जीवन लगा दिया।
इस दुनियों में उसी मनुज ने
नर तन को सार्थक किया ॥

हिन्दुस्तान में औरंगजेब का शासनकाल था। किसी इतिहासकार ने लिखा है :

''औरंगजेब ने यह हुक्म किया कि कोई हिन्दू राज्य के कार्य में किसी उच्च स्थान पर नियत न किया जाये तथा हिन्दुओं पर जजिया (कर) लगा दिया जाये। उस समय अनेकों नये कर केवल हिन्दुओं पर लगाये गये। इस भय से अनेकों हिन्दू मुसलमान हो गये। हिन्दुओं के पूजा-आरती आदि सभी धार्मिक कार्य बंद होने लगे। मंदिर गिराये गये, मस्जिदें बनवाई गईं एवं अनेकों धर्मात्मा मरवा दिये गये। उसी समय की उक्ति है कि सवा मन यज्ञोपवीत रोजाना उतरवाकर औरंगजेब रोटी खाता था...''

उसी समय कश्मीर के कुछ पंडितों ने आकर गुरु तेगबहादुरजी से हिन्दुओं पर हो रहे अत्याचार का वर्णन किया। तब गुरु तेगबहादुरजी का हृदय द्रवीभूत हो उठा एवं वे बोले :

''जाओ, तुम लोग बादशाह से कहो कि हमारा पीर तेगबहादुर है। यदि वह मुसलमान हो जाये तो हम सभी इस्लाम स्वीकार कर लेंगे।''

पंडितों ने वैसा ही किया जैसा कि श्री तेगबहादुरजी ने कहा था। तब बादशाह औरंगजेब ने तेगबहादुरजी को दिल्ली आने का बुलावा भेजा। जब उनके शिष्य मतिदास और दयाला औरंगजेब के पास पहुँचे तब औरंगजेब ने कहा :

''यदि तुम लोग इस्लाम धर्म कबूल नहीं करोगे तो कत्ल कर दिये जाओगे।''

मतिदास : ''शरीर तो नश्वर है और आत्मा का कभी कत्ल नहीं हो सकता।''

तब औरंगजेब ने क्रोधित होकर मतिदास को आरे से चिरवा दिया। यह देखकर दयाला बोला :

''औरंगजेब ! तूने बाबर वंश को एवं अपनी बादशाहियत को चिरवाया है।''

यह सुनकर औरंगजेब ने दयाला को जिंदा ही जलवा दिया।

औरंगजेब के अत्याचार का अंत नहीं आ रहा था। फिर गुरु तेगबहादुरजी स्वयं गये। उनसे भी औरंगजेब ने कहा :

''यदि तुम मुसलमान होना स्वीकार नहीं करोगे तो कल तुम्हारी भी यही दशा होगी।''

दूसरे दिन (मार्गशीर्ष शुक्ल पंचमी को) बीच चौराहे पर तेगबहादुरजी का सिर धड़ से अलग कर दिया गया। धर्म के लिए एक संत कुर्बान हो गये। तेगबहादुरजी के बलिदान ने जनता में रोष पैदा कर दिया। अतः बदला लेने की धुन सवार हो गयी। अनेकों शूरवीर धर्म के ऊपर न्यौछावर होने को तैयार होने लगे। तेगबहादुरजी के बलिदान ने समय को ही बदल दिया। ऐसे शूरवीरों का, धर्मप्रेमियों का बलिदान ही भारत को दासता की जंजीरों से मुक्त करा सका है।

देश तो मुक्त हुआ किन्तु क्या मानव की वास्तविक मुक्ति हुई ? नहीं। विषय-विकार, ऐश-आराम एवं भोग-विलासरूपी दासता से अभी भी वह आबद्ध ही है और इस दासता से मुक्ति तभी मिल सकती है जब संत-महापुरुषों की शरण में जाकर उनके बताये मार्ग पर चलकर मुक्ति-पथ का पथिक बना जाए। तभी मानव-जीवन सार्थक हो सकेगा।

*

हृदय के लिए हितकर : गाय का घी

गाय का घी गुणों में मधुर, शीतल, स्निग्ध, गुरु एवं हृदय के लिए हितकर होता है। वह सदा पथ्य, श्रेयकर एवं प्रियकर होता है। घी आँखों का तेज, शरीर की कांति एवं बुद्धि को बढ़ानेवाला है। घी आहार में रुचि उत्पन्न करनेवाला एवं जठराग्नि को प्रदीप्त करनेवाला है। घी वीर्य, ओज, आयु, बल एवं यौवन को बढ़ानेवाला है। घी खाने से सात्त्विकता, सौम्यता, सुन्दरता एवं मेधा शक्ति बढ़ती है।

घी वायु एवं पित्त के रोगों को तो हरता ही है, उसके अलावा यदि कफनाशक द्रव्यों द्वारा सिद्ध किया जाये तो कफ के रोगों को भी जीत लेता है। घी शरीर के अंगों को कोमल करता है। स्वर एवं रंग को निखारता है। जलन को शांत करता है। दुर्बलता एवं पतलेपन को मिटाता है तथा चक्कर एवं विष के रोगों का नाश करता है।

रोज सुबह-शाम नाक में गाय के घी की २-३ बूँदें डालने से सात दिन में आधासीसी मिट जाती है। चौथिया ज्वर, उन्माद, अपस्मार (मिर्गी) में पंचगव्य घी को सिद्ध करके पिलाने से इन रोगों का शमन होता है। जले हुए पर धोया हुआ घी (घी को पानी में मिला कर खूब घोंटे। जब एकरस हो जाये फिर पानी निकालकर अलग कर दें, ऐसा घी) लगाने से किसी भी प्रकार की विकृति के बिना ही घाव मिट जाता है। औषधीय दृष्टि से घी जितना पुराना उतना ही ज्यादा गुणप्रद होता है। पुराना घी पागलपन, मिर्गी जैसे मानसिक रोगों एवं मोतियाबिंद जैसे रोगों में चमत्कारिक परिणाम देता है। घी बल को बढ़ाता है एवं शरीर तथा इन्द्रियों अर्थात् आँख, नाक, कान, जीभ तथा त्वचा को पुनः नवीन करता है।

आयुर्वेद तो कहता है कि जो लोग आँखों का तेज बढ़ाना चाहते हों, सदा नीरोगी रहना चाहते हों, बलवान रहना चाहते हों, लंबा आयुष्य भोगना चाहते हों, ओज, स्मरणशक्ति, धारणाशक्ति, मेधाशक्ति, जठराग्नि का बल, बुद्धिबल, शरीर की कांति एवं नाक-कान आदि इन्द्रियों की शक्ति बनाये रखना चाहते हों उन्हें घी का सेवन अवश्य करना चाहिए। जिस प्रकार सूखी लकड़ी तुरंत टूट जाती है वैसे ही घी न खानेवालों का शरीर भी जल्दी टूट जाता है।

गाय का घी हृद्य है अर्थात् हृदय के लिए सर्वथा हितकर है। नये वैज्ञानिक शोध के अनुसार गाय का घी जो कोलेस्ट्रोल उत्पन्न करता है वह हृदय एवं शरीर के लिए उपयोगी कोलेस्ट्रोल, पोजीटिव कोलेस्ट्रोल उत्पन्न करता है। इसलिए हृदयरोग के मरीज भी घबराये बिना गाय का घी खा सकते हैं। अपने **सांई** श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र में नये शोधों के **अनुसार** डॉक्टरों, वकीलों, व्यापारियों को रोज **५० ग्राम घी** पिलाकर उनका ब्लॅडप्रेशर नियंत्रित करके **सामान्य** पर लाया जाता है। फिर उन्हें ब्लॅडप्रेशर की **कोई भी** दवा लेने की जरूरत नहीं पड़ती। ❊

मैं एक इस्माइली खोजा हूँ तथा अपने धर्म में अडिग हूँ। मेरे ही कुटुम्ब में मेरे दो भाई एवं एक भतीजे की मौत हो गयी तथा मुझे हार्टअटैक हो गया। मुझे जीवन में किसी भी प्रकार की शांति नहीं मिल रहीथी।

इत्तफाक से भावनगर में आयोजित चार दिन के सत्संग में जाने की मुझे कुदरती प्रेरणा मिली। सत्संग में जाने के बाद तो मानो मेरे जीवन में एक नयी ज्योति पैदा हो गयी। मेरी अशांति भाग गई तथा मैं प्रसन्न रहने लगा हूँ और आखिरी दिन तो मुझे पू. बापू से मंत्रदीक्षा लेने का सौभाग्य भी प्राप्त हो गया। पू. बापू की इस करुणा-कृपा को मैं अपना बहुत बड़ा नसीब मानता हूँ। आपके आश्रम से प्रकाशित 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका को मैं नियमित पढ़ता रहूँगा। अब तो यही इच्छा है कि आपकी कृपादृष्टि सदैव बनी रहे...

- डॉ. सदरुद्दीन जी. रत्नाणी
(आगाखानी खोजा)
भावनगर (गुजरात)

पूज्य बापू के अन्य सत्संग कार्यक्रम

(१) डुंगरा-वापी में : १२ से १४ दिसम्बर '९७. सुबह ९ से १२. शाम ३ से ६. संत श्री आसारामजी गुरुकुल आश्रम, सेलवास रोड। फोन : २४४४१. पूनम दर्शन १४ दिसम्बर को यहीं पर। **(२) तिथल-वलसाड़ में** : १४ दिसम्बर '९७. शाम ४ से ७. **(३) सूरत आश्रम में शिविर** : १५ से १७ दिसम्बर '९७. संत श्री आसारामजी आश्रम, वरीयाव रोड, जहाँगीरपुरा, सूरत। फोन: ६८५३४१, ६८७९३६. १५ दिसम्बर को सायण (सूरत) में पूज्य बापू के पावन करकमलों द्वारा मंदिर की प्राणप्रतिष्ठा सुबह १० से १२. **(४) धुलिया (महा.) में** : १९ से २१ दिसम्बर '९७. सुबह ९-३० से ११-३०. शाम ३ से ५. एस. एस. वी. पी. एस. कालेज ग्राउन्ड, देवपुर, धुलिया। फोन : ३६२८९, ३६०३६, ३६३३६, २४९३६. **(५) छिन्दवाड़ा में** : २२, २३ दिसम्बर '९७. सुबह ९-३० से ११-३०. शाम ३ से ५. संत श्री आसारामजी आश्रम, खजरी, छिन्दवाड़ा। फोन : ४२०६६. **(६) जबलपुर में सत्संग एवं मकानों का लोकार्पण समारंभ** : २४, २५ दिसम्बर '९७. सुबह ९ से ११. शाम ३ से ५. शहीद स्मारक मैदान, गोल बाजार, जबलपुर। फोन : ३४३७२५, ३२५६७३, ३२८४२५. **(७) अमरावती में** : २६ से २८ दिसम्बर '९७. सुबह ९-३० से ११-३०. शाम ३ से ५. हनुमान व्यायाम प्रसारक मंडल, अमरावती। फोन: ६७२९४८, ६७९६९२. **(८) नागपुर आश्रम में** : २९ से ३१ दिसम्बर '९७. **(९) हैदराबाद आश्रम में** : २ से ४ जनवरी '९८. **(१०) बालाघाट (महा.) में** : १ जनवरी। **(११) मुंबई में** : ७ से ११ जनवरी '९८. फोन : ६४२५९२२, ५६४१८०८, ८८७४५१९, ६२६५२००, २८७४१२७, ५५१६४३८. **(१२) अमदावाद आश्रम में उत्तरायण शिविर** : १२ से १४ जनवरी '९८. संत श्री आसारामजी आश्रम, साबरमती, अमदावाद-५. फोन: ७५०५०१०, ७५०५०११.

गुरुदेव के यहाँ अंधेर तो क्या, देर भी नहीं है...

परम कृपालु पूज्य सद्गुरुदेव के श्रीचरणों में मेरे कोटि-कोटि वंदन।

मैं अपने माता-पिता के साथ भावनगर में रहती हूँ। १९ अक्तूबर '९७ के दिन मेरी बड़ी बहन की तबियत अचानक गंभीर हो जाने की वजह से उसे सर टी. अस्पताल में भर्ती किया। वहाँ के सर्जन डॉ. झा ने एवं दूसरे डॉक्टरों ने कहा : ''अस्थमा का अटैक है।'' अस्पताल के कर्मचारी भीतर ही भीतर गंभीरतापूर्वक बातें कर रहे थे।

> *कहते हैं कि 'भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं।' किन्तु हमारे गुरुदेव के यहाँ तो देर भी नहीं है और अंधेर भी नहीं है।*

उस वक्त मेरी बहन के साथ संबंधी के रूप में केवल मैं ही उपस्थित थी। मैं आँखें बंद करके प. पू. गुरुदेव से प्रार्थना करने लगी कि 'आप तो भगवान हैं... मेरी बहन को बचा लेने में समर्थ हैं।' मेरी बहन भी मेरी मनःस्थिति को समझते हुए तुरंत ही वार्ड की दीवार पर लगे पू. बापू के स्टीकर को दिखाकर कहने लगी :

''देख, तू जिसकी प्रार्थना कर रही है, वे तेरे बापू तो ये रहे। जरा उधर तो देख।''

मानो, यमदूतों के प्रवेश निषेध के लिए पू. बापू वहाँ उपस्थित हो गये ! मेरी बहन के शरीर में दैवी संचार हो गया हो ऐसी हिम्मत आ गयी। मैंने भी पू. बापू के दर्शन करके ही अन्न-जल ग्रहण करने की प्रतिज्ञा कर ली। मैं बोल पड़ी कि : ''बहन ! आपको कुछ नहीं होगा।''

दो दिन के बाद ही वे सामान्य व्यक्ति की तरह डॉक्टर के पास छुट्टी माँगने गयीं। डॉक्टर ने मना किया किन्तु बहन बोली: ''मैं अब बिल्कुल ठीक हूँ।''

घर आकर उसी दिन से वे घर के सारे काम करने लगीं। मानो, कुछ हुआ ही नहीं हो ! कहते हैं कि 'भगवान के घर देर है, अंधेर नहीं।' किन्तु हमारे गुरुदेव के यहाँ तो देर भी नहीं है और अंधेर भी नहीं है।

इसी प्रकार सन् १९९६ की घटना है :

मेरी डेढ़ मास की भतीजी को मस्तिष्क ज्वर होने की वजह से उसकी 'पल्स' शून्य होने लगी। यह देखकर हम सब रो पड़े। किन्तु रोते वक्त भी मेरे मन में पूज्य गुरुदेव का स्मरण चल रहा था। इतने में मानो अचानक पू. बापू ने ही संकेत किया हो इस प्रकार मैं भतीजी के सिर पर बर्फ घिसने लगी। थोड़ी देर में तो वह रोने लगी, तब सबकी जान में जान आयी। साधक की स्थिति गंभीर होने पर उसके सच्चे हृदय की प्रार्थना को सुनकर पूज्य बापू दौड़े आते हैं।

ऐसे परम दयालु सद्गुरुदेव को कोटि-कोटि नमन...

- दक्षाबहन न. दवे
देवुबाग, भावनगर (गुज.).

> *इस बार हरिद्वार में कुंभ मेले का आयोजन जनवरी से अप्रैल तक होगा। अपने आश्रम की ओर से भी मार्च-अप्रैल के दौरान इस कुंभ मेले में कैम्प लगाने की योजना है। इस विषय में अमदावाद के आश्रम में दिनांक १२ से १४ जनवरी के दौरान मीटिंग रखी गई है।*

साधकों के लिए जल्द ही तैयार हो रहा है आयुर्वेद का उत्तम रसायन

च्यवनप्राश एवं ब्रह्मरसायन

यह च्यवनप्राश आरोग्यता के लिए एवं रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ाने के लिए अति उत्तम तथा स्वास्थ्य के तमाम गुणों से भरपूर है। प्रत्येक व्यक्ति को इस च्यवनप्राश का प्रयोग करना चाहिए और सर्दियों में तो विशेष रूप से। सुबह १० से १५ ग्राम च्यवनप्राश खाकर दूध पीना चाहिए। इससे स्नायुबल, रोगप्रतिकारक शक्ति बढ़ती है। शरीर की तेजस्विता बढ़ती है और स्फूर्ति बनी रहती है।

च्यवनप्राश में जो आँवले प्रयुक्त किये जाते हैं वे आँवले वीर्यवान एवं विशेष गुणवान तो नवम्बर की १५ तारीख के बाद ही बनते हैं। इस समयावधि के बादवाले आँवलों में वैदिक दृष्टि से वर्णित वनस्पतियाँ, बूटियाँ एवं औषधियाँ मिलाकर च्यवनप्राश एवं ब्रह्मरसायन बनाया जाय तो वह बहुत-बहुत गुणकारी एवं उपयोगी बनता है।

आजकल धंधादारी कंपनियाँ जो च्यवनप्राश बनाकर बाजार में रखती हैं वे पचास-पचास लाख रूपये च्यवनप्राश के विज्ञापनों (Advertisements) में खर्च करती हैं और लाखों किलो माल बनाती हैं परन्तु ऐसे च्यवनप्राश के निर्माण में प्रयुक्त आँवले पूर्ण वीर्यवान एवं गुणकारी बने हुए नहीं होते। ऐसे आँवलों में चाशनी तथा थोड़ा-बहुत और कुछ डालकर च्यवनप्राश बनाते हैं। इस प्रकार च्यवनप्राश के निर्माण में उन धंधादारी कंपनियों का उद्देश्य करोड़ों रूपये कमाने का होता है। ऐसा च्यवनप्राश कितना लाभकारी होगा यह समझ सकते हैं। ऐसे च्यवनप्राश की गुणवत्ता मारी जाती है।

ऐसे समय में दिल्ली, अमदावाद तथा सूरत समिति ने पू. बापू के समर्पित साधकों, अंतरंग सेवाधारी भक्तों के लिए उत्तम गुणवत्ता को ध्यान में रखते हुए वैद्यराज की निगरानी में वीर्यवान आँवलों में करीब ५६ औषधियों का मिश्रण करके च्यवनप्राश एवं ब्रह्मरसायन बनाने का निर्णय किया है। केवल साधक परिवार ही इस सेवा का लाभ ले सकेगा।

इस च्यवनप्राश एवं ब्रह्मरसायन के इच्छुक साधक अथवा समितियों के भाई दिल्ली, अमदावाद या सूरत किसी एक जगह अपना नाम लिखा दें। दिसम्बर के दूसरे-तीसरे सप्ताह में यह च्यवनप्राश एवं ब्रह्मरसायन तैयार हो जाएगा। *

सावधान !

संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा पुस्तकों के साथ-साथ 'ऋषि प्रसाद' मासिक पत्रिका, 'लोक कल्याण सेतु' समाचार पत्र एवं सिंधी भाषा में 'दरवेश दर्शन' मासिक पत्रिका ही प्रकाशित किए जाते हैं। इसके अलावा अन्य किसी पत्र-पत्रिका का प्रकाशन नहीं किया जाता है। अन्य कोई पत्रिका या समाचार पत्र यदि पूज्य बापू का फोटो या छपी हुई अन्य कोई सामग्री दिखाकर चंदा इकट्ठा करे या विज्ञापन की माँग करे तो उसका जिम्मेदार चंदा या विज्ञापन देनेवाला स्वयं होगा। यदि ऐसा कोई व्यक्ति या कोई संस्था चंदा करते या विज्ञापन माँगते मालूम पड़ें या ऐसी कोई जानकारी प्राप्त हो तो तुरंत मुख्यालय अमदावाद को सूचित करें। अगर आप देश-विदेश में प्रसारित समाचार पत्र में अपना विज्ञापन छपवाना चाहतें हैं तो केवल 'लोक कल्याण सेतु' समाचार पत्र में ही प्रकाशित करवा सकते हैं। 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका में विज्ञापन नहीं छापे जाते हैं। 'ऋषि प्रसाद' पत्रिका, 'लोक कल्याण सेतु' समाचार पत्र व सिंधी भाषा में 'दरवेश दर्शन' के अलावा आश्रम द्वारा अन्य किसी पत्रिका का प्रकाशन नहीं किया जाता है। अतः पूज्यपाद संत श्री आसारामजी बापू का फोटो छापकर यदि कोई छोटे-मोटे अखबार या पत्रिकाएँ चंदा करती हैं, विज्ञापन माँगती हैं तो वह उनका अपना षडयंत्रभरा स्वार्थ है- जिससे सावधान हों।

उझानी : दिनांक : २२ से २४ अक्तूबर '९७ के दौरान श्री सुरेशानंदजी के सत्संग के बाद दिनांक २५ और २६ के दिन पू. बापू के सत्संगामृतपान का सुअवसर उझानीवासियों को मिला । वहाँ के भक्त एवं समिति के साधकों के उत्साह में इस सत्संग समारोह से अभिवृद्धि हुई । यह गीता-भागवत ज्ञान का प्याउ सदा चलता ही रहे इस भावना से वहाँ आश्रम-निर्माण के लिए धर्मात्मा पुण्यात्मा सज्जनों ने गाँव के बीच स्थित मूल्यवान भूमि समिति को अर्पित की। आधि-व्याधि-उपाधियों की निवृत्ति के लिए वहाँ की भूमि पर स्थित एक वटवृक्ष पर पू. बापू द्वारा शक्तिपात हुआ । अब इस पावन बने हुए वटवृक्ष की परिक्रमा करके तथा मनौतियाँ मानकर भक्तजन अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण करते हैं। बदायूँ जिले में बरेली से ६० कि. मी. की दूरी पर उझानी स्थित है ।

आदिवासी क्षेत्रों में भण्डारा : प्रतिवर्ष की तरह इस वर्ष भी दिनांक : २७ एवं २८ अक्तूबर '९७ को दीपावली के पावन पर्व पर संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा कोटड़ा (राज.) एवं नवागाम (गुज.) के आदिवासी क्षेत्रों में दो दिवसीय भण्डारे का आयोजन किया गया। इसका लाभ विशाल संख्या में आबाल-वृद्ध सभी भाई-बहनों ने लिया। उन सभी आदिवासियों में वस्त्र, बर्तन, अनाज, साबुन जैसी अन्य रोजमर्रा के जीवन में काम आनेवाली वस्तुओं के अलावा नकद दक्षिणा एवं मिठाई के पैकेटों का वितरण किया गया ।

उन दृश्यों को देखकर सभी ने धन्यता का अनुभव किया जब पूज्य बापू ने स्वयं अपने पावन करकमलों से गरीब आदिवासी बच्चों के फटे-पुराने कपड़े उतारकर नये वस्त्र पहनाये एवं उन्हें मिठाई तथा पैसे दिये ।

पू. बापू ने सत्संग के दौरान भारतीय संस्कृति की महानता एवं सत्यता का बखान किया एवं अपने धर्म में अडिग रहने की प्रेरणा दी । पू. बापू की मधुर वाणी का रसपान करने के बाद आदिवासी भाई-बहनों के लिए की गयी भोजन-प्रसाद की सुंदर व्यवस्था का सभी ने लाभ लिया ।

भंडारे में दिये गये वस्त्र, अनाज, बर्तन, नकद दक्षिणा एवं मिठाई के पैकेटों तथा अन्य चीजों को पानेवाले आदिवासी भाई-बहनों को ऐसा लगा कि 'ऐसे दीपावली के त्यौहार पर हमारे जैसे आदिवासियों का ध्यान रखनेवाले पूज्य बापू ही हैं। इसीलिए हम आनंदपूर्वक दीवाली मना सकते हैं।' पूरा आदिवासी अंचल पूज्य बापू के प्रति अहोभाव से भर उठा था एवं प्रसन्नता की लहर छा गयी थी ।

अमदावाद : अमावस्या की अंधकारमयी रात्रि में भी दीपों का जगमग प्रकाश फैलानेवाला, जीवन में उत्साह, उमंग एवं उल्लास का संचार करनेवाला पर्वों का पुंज है -दीपावली महोत्सव ।

प्रकाश के पर्व इस दीपावली में दीपकों के बाह्य प्रकाश के साथ ही अगर आंतरिक प्रकाश, आत्मप्रकाश फैलानेवाले, ज्ञान का दीप प्रगटानेवाले आत्मारामी संतों का सान्निध्य भी हो तो फिर कहना ही क्या ?

दीपावली के ३-४ दिन पूर्व से ही देश के कोने-कोने से श्रद्धालुओं का आगमन अमदावाद स्थित आश्रम में होने लगा था। लंबे समय से की गयी प्रतीक्षा तब पूरी हुई जब कोटड़ा (राज.) एवं नवागाम (गुज.) के आदिवासी इलाकों में लाखों आदिवासियों को भोजन-वस्त्र, मिठाई एवं दक्षिणा के साथ-साथ सत्संगामृत का भी दान करके पूज्यश्री दिनांक : ३० अक्तूबर '९७ को दोपहर एक बजे साबर तट स्थित आश्रम में पधारे ।

यहाँ हजारों भक्तों को संबोधित करते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''दीपक के प्रकाश के लिए चार चीजों की जरूरत होती है : दीपक, तेल, बाती और माचिस। ऐसे ही उन ज्योतियों की ज्योति को, आत्मज्योति को, ज्ञानस्वरूप परमात्मा को पाने के लिए भी चार चीजें चाहिए : विवेक, वैराग्य, षट्संपत्ति और मुमुक्षुत्व । ये चारों चीजें अगर मानव-जीवन में आ जायें तो ईशप्राप्ति कठिन नहीं है।''

सत्संग के पश्चात् लगी लंबी कतार और फिर दीपकों की रोशनी से जगमगाते आश्रम में, भक्तों के आग्रहवशात् उनके उत्साह में अभिवृद्धि करते हुए पूज्यश्री ने पटाखे बँटवाये और सत्संगियों ने जलाये पटाखे... एक पटाखे का आनंद अनेक लेते तो अनेक के अनेक पटाखों को जलाते समय कैसा रहा होगा वातावरण ! निर्दोष हाथों से स्नेहसहित मिले वे पटाखे... एक ही गुरु-पिता की कई नात, कई जात की अनेक संतानों ने एक होकर मनायी दिवाली। जैसे अनेक तरह के रंग-बिरंगी पटाखों में गंधक एक है वैसे ही एक आत्मा का आनंद अनेक रूपों में आता है और अनेक सुखों का मूल एक आत्मा है। सागर की अनेक लहरियों में लहरानेवाला सागर एक ही है। अनेक दिलों में दिलबर एक ही है, अनेक नात-जातवाले व्यक्तियों में चैतन्यस्वरूप परमात्मा एक ही है।

इस प्रकार पूज्यश्री के शिष्यों ने मनायी सामूहिक दिवाली। पूज्यश्री ने इस अवसर पर कहा : **''पटाखों के साथ अपने अहं को, अपनी बुराइयों को भी जला देना चाहिए।''**

दिनांक : १ नवम्बर '९७ अर्थात् नूतनवर्ष के प्रारंभ का दिन... सुबह से ही भक्तों-श्रद्धालुओं का आगमन होता रहा। इसी दिन गुजरात के मुख्यमंत्री श्री दिलीपभाई परीख भी नूतनवर्ष के प्रथम दिन पूज्यश्री से आशीर्वाद लेने आये। पूज्यश्री का स्वागत करते हुए उन्होंने कहा :

''गुजरात राज्य की बागडोर सँभालने के बाद मुझे यहाँ आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ इसे मैं अपना अहोभाग्य मानता हूँ। संतों के चरणों में जो शांति एवं आनंद मिलता है वह दूसरी किसी भी जगह नहीं मिलता है। इसका मैंने आज प्रत्यक्ष अनुभव पू. बापू के सान्निध्य से किया है। पू. बापू को मैं लाख-लाख वंदन करता हूँ। पू. आसारामजी बापू के श्रीचरणों में मैं आता रहूँगा।''

दिनांक : २ नवम्बर '९७ भाईदूज के पावन पर्व के दिन सत्संग के दौरान पूज्यश्री ने भाई-बहन के पवित्र संबंध पर प्रकाश डाला एवं दिनांक : ५ नवम्बर '९७ को लाभपंचमी (ज्ञानपंचमी) के दिन मेहसूल मंत्री श्री आत्मारामभाई पटेल पूज्यश्री से आशीर्वाद ग्रहण करने आये। पूज्यश्री का स्वागत करते हुए उन्होंने कहा :

''आज लाभपंचमी के पवित्र दिवस पर पूज्य बापू के दर्शन हुए इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ। चाहे जैसे भी लोग हों, मंत्री हों, उद्योगपति हों या कोई अन्य, किन्तु जब तक जीवन में पवित्रता न हो तब तक इनका कोई अर्थ नहीं है। क्योंकि अंत समय में कुछ भी साथ नहीं जानेवाला है। **यहाँ से सीधे भगवान के घर कैसे पहुँचा जाये ? चौरासी के चक्कर से कैसे बचा जाये ? यह युक्ति तो पूज्य बापू से ही मिलती है।''**

पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में दीपावली का महोत्सव तो मानो, पंख लगाकर उड़ गया। तत्पश्चात् अपने एकांतवास के दौरान भी करुणा-कृपावश पूज्यश्री शाम को अपने भक्तों को दर्शन देने कुटिया से बाहर पधारते थे। दिनांक : ७ नवम्बर '९७ को शाम पाँच बजे पूज्यश्री ने जूनागढ़ के लिए प्रस्थान किया।

९ नवम्बर '९७ को पू. बापू जूनागढ़ से भावनगर पधारे। यहाँ भी दो दिन उन्होंने एकांतवास में ही बिताया। बाद में दिनांक : १२ नवम्बर '९७ को भावनगर के पास वल्लभीपुर में सत्संग-कार्यक्रम हुआ जिसमें १३५ गाँवों से आये हुए भक्तों ने पूज्यश्री के दर्शन एवं सत्संग का लाभ लिया।

वल्लभीपुर : नूतनवर्ष के सत्संग-सत्र की शुरूआत इस वर्ष वल्लभीपुर नामक गाँव (जि. भावनगर, गुज.) से हुई। यहाँ दिनांक : १२ नवम्बर '९७ के दिन दोपहर बाद एकसत्रीय सत्संग का आयोजन किया गया था।

आत्मवेत्ता संत पू. बापू के पावन मुखारविंद से

निःसृत ज्ञानगंगा में स्नान करने के लिए आज तो मानो, वल्लभीपुर एवं आसपास के १३५ गाँवों का पूरा मानव-समुदाय उमड़ पड़ा था। सभी ने योगीराज पू. बापू की मधुर वाणी का रसपान अभूतपूर्व शांति के साथ किया।

सत्संग की पूर्णाहुति के बाद लोगों की श्रद्धा एवं भावना को देखकर पूज्यश्री व्यासपीठ से उतर पड़े एवं लोगों के बीच जाकर अपने करकमलों से काजू-बादाम का प्रसाद लुटाया। धन्य हैं वे लोग जिन्हें ऐसे आत्मवेत्ता ब्रह्मनिष्ठ संत के पावन करकमलों द्वारा प्रसाद लूटने का सौभाग्य मिला। वल्लभीपुर से पूज्यश्री ने भावनगर के लिए प्रस्थान किया।

भावनगर : दिनांक १३ से १६ नवम्बर '९७ तक यहाँ पूज्यश्री के सत्संग समारोह का भव्य आयोजन हुआ। यहाँ तो प्रातःस्मरणीय पू. बापू की ज्ञानगंगा का रसपान करने के लिए इतनी विशाल मानव मेदिनी उपस्थित हुई थी कि सत्संग समारोह के प्रथम दिन ही विशाल पण्डाल खचाखच भर गया। दूसरे दिन से ही रोज-रोज पण्डाल बढ़ाने के बावजूद पण्डाल छोटा ही पड़ता रहा...

सत्संग कार्यक्रम के दौरान भावनगर क्षेत्र के संसद सदस्य श्री राजूभाई राणा, गुजरात के भूतपूर्व गृहमंत्री श्री महेन्द्रभाई त्रिवेदी, वक्ता श्री दयागिरि गोस्वामी एवं शहर के अग्रगण्य प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने पुष्पहार अर्पण कर पू. बापू का भावभीना स्वागत किया। श्री महेन्द्रभाई त्रिवेदी ने तो सत्संग के चारों ही सत्रों में आकर पूज्यश्री के चरणों में बैठकर सत्संगामृत का पान किया।

सांसद श्री राजूभाई राणा ने अपने वक्तव्य में बताया :

''आज इस प्रसंग पर मेरे लिए कुछ कहने को बचता ही नहीं है, फिर भी पू. बापू की आज्ञा है इसलिए दो शब्द कहता हूँ। भारत देश का इतिहास दस हजार वर्ष से भी ज्यादा पुराना है। हमारे देश पर अनेकों आक्रमण होते रहे हैं फिर भी भारत ने अपना अस्तित्व नहीं खोया है। **यह देश आज पू. आसारामजी बापू जैसे महान् संतों के कारण ही टिक पा रहा है। भारत की आध्यात्मिकता ने समग्र विश्व को अनोखा मार्गदर्शन दिया है।''**

इस सत्संग समारोह के दौरान दिनांक : १४ नवम्बर '९७ को पूर्णिमा के अवसर पर पू. बापू के दर्शन करके ही अन्न-जल ग्रहण करनेवाले व्रतधारी हजारों साधक देश के विभिन्न भागों से एक दिन पूर्व ही आ पहुँचे थे। पूनम के दिन सुबह से ही पूनम व्रतधारियों की भीड़ पू. बापू के निवास-स्थान पर एकत्रित हो गयी थी।

दिनांक : १६ नवम्बर '९७ को पूर्णाहुति के प्रसंग पर पूज्यश्री ने उपस्थित लाखों लोगों से दक्षिणा ग्रहण की। किन्तु यह दक्षिणा रूपये-पैसे अथवा किसी ऐहिक वस्तु के रूप में न थी वरन् पूज्यश्री ने लोगों से दारू, सिगरेट, बीड़ी और पान-मसाले जैसे दुर्व्यसनों का सेवन न करने का वचन दक्षिणा के रूप में लिया। इसी तरह बहनों से भी दक्षिणा के रूप में कम बोलने का वचन लिया। इसके अलावा सबने एक विशेष वचन भी दिया कि 'जो लोग जप-ध्यान नहीं करते थे वे आज से ही शुरू कर देंगे एवं जीवन विकास, यौवन सुरक्षा, ईश्वर की ओर जैसी पुस्तकें पाँच बार जरूर पढ़ेंगे।'

इस प्रकार व्यसन छोड़ने के साथ-साथ सत्साहित्य के अध्ययन एवं जप-ध्यान करने की दक्षिणा पूज्यश्री ने माँगी और यह दक्षिणा भावनगर के लाखों-लाखों भाविक भक्तों ने स्नेह के साथ दी। इसी दिन भा. ज. पा. के गुजरात राज्य के भूतपूर्व मुख्यमंत्री श्री केशुभाई पटेल भी पूज्य बापू के दर्शनार्थ पधारे थे।

तत्पश्चात् पूज्यश्री भावनगर के आश्रम में ही एकांतवास के लिए रुके किन्तु श्रद्धालु भक्तों की भीड़ एवं उनके तीव्र संकल्पों के वशीभूत होकर पू. बापू शाम को दर्शन-सत्संग का लाभ देने पधार ही जाते। इस समय के दौरान समुद्र की सैर का भी आयोजन हुआ।

यह बड़े आनंद की बात है कि आगामी पूर्णिमा के समय दिनांक : १२ से १४ दिसम्बर '९७ तक डुँगरा-वापी आश्रम में कार्यक्रम का आयोजन किया गया है।

दिनांक १४ दिसम्बर '९७ की दोपहर तक डुँगरा-वापी आश्रम में कार्यक्रम होगा। तत्पश्चात् उसी दिन वलसाड़ स्टेशन के पास तिथल में सागर-तट पर शाम को ४ से ७ बजे तक दर्शन-सत्संग कार्यक्रम का आयोजन किया गया है। पूनम व्रतधारियों के लिए सामुद्रिक सैर का आनंद मनाने की, खीर खाने की एवं सत्संग की खास व्यवस्था है।

*

भारत की आजादी के स्वर्ण जयंती वर्ष के अवसर पर समाज के उत्कर्ष में सहयोगी

संत श्री आसारामजी भक्त मंडल, कतारगाम (सूरत)

द्वारा आयोजित

'भक्ति जागृति प्रचार यात्रा एवं सत्संग समारोह'

एक झलक

सौराष्ट्र के सभी गाँवों में गुरुसंदेश पहुँचाने के लिए 'भक्ति जागृति प्रचार यात्रा एवं सत्संग समारोह' का आयोजन किया गया। यह यात्रा कतारगाम (सूरत) से दिनांक : ३० अक्तूबर '९७ को अमदावाद पहुँची।

आगे चलती हुई इस प्रचार यात्रा के दौरान पूज्य बापू की शिष्या साध्वी बहन के सान्निध्य में कीर्तनयात्रा, प्रभातफेरी, रथयात्रा एवं प्रत्येक दिन एक गाँव में रात्रि को ८-३० से १०-३० बजे तक सत्संग कार्यक्रम के अलावा प्रतिदिन दो गाँवों में विडियो प्रोजेक्टर पर पूज्य बापू के जाहिर सत्संग की व्यवस्था थी। ग्रामीण क्षेत्रों में सत्साहित्य के निःशुल्क वितरण एवं प्रत्येक गाँव में समाज के नैतिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिए सहयोगी मासिक पत्रिका 'ऋषि प्रसाद' के साढ़े तीन हजार अंकों का निःशुल्क वितरण एवं नये ६४५ सदस्य बनाये गये। ११८८५/- रूपयों के सत्साहित्य का निःशुल्क वितरण किया गया। प्रत्येक गाँव में पेन्टरों द्वारा दीवारों पर पूज्य बापू के सुविचारों का लेखन, व्यसनमुक्ति के पर्चों का वितरण वगैरह अन्य कार्यक्रम हुए थे।

बारह दिवसीय भक्ति जागृति प्रचार यात्रा में ८७ गाँव पुण्यमय एवं धनभागी हुए।

पूज्य बापू के लाडले भक्तों एवं उत्साही साधकों के द्वारा कुल २२ गाँवों में रात्रि को प्रोजेक्टर द्वारा जाहिर सत्संग का आयोजन तथा २० गाँवों में विडियो सत्संग का आयोजन हुआ था।

'भक्ति जागृति प्रचार यात्रा' ने गाँवों में पू. बापू के सेवा, स्नेह, सहानुभूति, सत्संग एवं साधना संबंधी निर्देशों का प्रसाद बाँटा। गाँवों में भक्तिमय, ज्ञानमय, सेवामय एवं आनंदमय वातावरण छा गया। 'संत श्री आसारामजी भक्त मंडल' ने सेवा करने का आनंद लूटा एवं ८७ गाँवों को सत्संग-सरिता में सराबोर करने का सौभाग्य पाया। कतारगाम के भक्त मंडल के युवकों ने तो इस कार्य द्वारा मानो सभी समितियों को दैवी कार्य करने की प्रेरणा दे दी। किसीने सच ही कहा है :

''वे बड़े भाग्यशाली हैं जो खुद तो प्रभुनाम जपते ही हैं एवं औरों को भी जपाते हैं।''

ते सभाग्या मनुषेषु कृतार्था कृतनिश्चयः।
सुमरन्ति स्मार्यन्ति हरिर्नाम कलियुगे॥

*

अपने पुत्र के साथ, कई पुत्रों को पहना रहे हैं वस्त्र
पू. बापू के करुणामय हाथ।

गरीबों के दिल के हाल सुने गरीबनवाज...
राखे सबकी लाज।

दुःख काटें... सुख बाँटें...

दरिद्रनारायणों को वस्त्र, बर्तन, दक्षिणा, मिठाई आदि देते हुए, उनके साथ दो मीठी बातें करते हुए, हर दिल में मधुरता का संचार करते हुए संतश्री की अनोखी - अनूठी दिवाली... अपने सैकड़ों सेवकों के साथ हजारों लाखों दरिद्रनारायणों के दिल रूपी देवता को प्रसन्न करते हुए पूज्यश्री।

अपने सैकड़ों शिष्यों के साथ स्नेहपूर्वक वस्त्र, मिठाई, बर्तन, दक्षिणा बाँटते हुए पू. बापू।

पावन करकमलों से परोसा गया पावन प्रसाद
पाते हुए धनभागी दरिद्रनारायण।

हजारों-हजारों आदिवासी दरिद्रनारायण पा रहे हैं प्रेरणा,
सांत्वना, स्नेह और सभी को मिलेगा दीपावली का प्रसाद।

कलकत्ता के दरिद्रनारायणों को स्नेह एवं सांत्वना के साथ दक्षिणादि बाँटते हुए बालयोगी श्री नारायण स्वामी।